भगवान् श्रीरामकी बाललीला

GITA PRESS, GORAKHPUR

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ५ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक पूर्णिमा सं० १९८७ | अङ्क २

वेदोपदेश

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वाजिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्यः ॥१॥

हे परमात्मन् ! आप दुष्ट पुरुषों से हमें बचावें, और धूर्त, अधर्मी, दुष्टाचारी तथा हमारे हनन की इच्छा करने वाले पापियों से हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परा देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
किं स्विद्गर्भप्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥२॥

जो द्युलोक तथा पृथिवी लोक से परे है और जो विद्वान् तथा असुरों की इन्द्रियों से भी अगोचर है, उस शक्ति ने पहिले किस वस्तु को गर्भरूप से धारण किया ? उस ने पहिले सूक्ष्म वाष्परूपा प्रकृति को गर्भरूप से धारण किया।

यज्ञे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥३॥

हे दो शक्तो ! मैं तुम्हें वेद के साथ जोड़ता हूं, वह इस प्रकार कि तुम्हारे ऊपर सामग्री लाद कर यज्ञ कुण्ड में लेजाई जाय ॥३॥

यथा मासं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने।
यथापुंसो विपरुप्तं स्त्रियां निहन्यते मनः ॥४॥

हे स्त्रियो ! तुम अपने बालक में मद वाले मन को और दृढ़ भाव से प्रेम करो जिस प्रकार क्वारे जूये में मद्यप मद्य में और मांसाहारी मांस में कुत्सित प्रेम करते हैं ऐसे भान्ति तुम प्रेम न करो ॥ ४ ॥

अमा ते तुग्र्य पचामि तीव्रं सुतं पंच दशं निरिंचम् ॥५॥

हे इन्द्र मैं तुम्हारे लिये पुष्टि देने वाला, वीर्य बढ़ाने वाला ओषध पकाता हूं और प्रति दिन एक २ पत्र बढ़ने वाली सोम का रस निकाल कर तुम्हारे लिए बनाता हूं ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति।

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

कथा कूल्ह अल्ह की।

कूल्ह और अल्ह दो भाई रत्नवाड़े में थे। बड़े भाई कूल्ह आदि से ही भगवद्भक्त, वैराग्यवान् और त्यागी थे, भगवत् के माधुर्य रूप के ध्यान में मग्न रहते थे और भगवच्चरित्र तथा गुणों का कीर्तन किया करते थे। छोटे भाई अल्ह मद्य मांस के खाने पीने वाले राजाओं के यश के कवित्त बनाया करते थे, घुनाक्षर न्याय कभी २ भगवच्चरित्रों का कीर्तन किया करते थे और बड़े भाई की आज्ञा में रहा करते थे। एकदिन बड़े भाई ने कहा की यह मनुष्य जन्म दुर्लभ है, संसार अनित्य है, इसलिये उचित है कि हम दोनों द्वारकाजी में भगवत् के दर्शन कर आवें। छोटा भाई भी राजी होगया और दोनों द्वारका में आये।

बड़े भाई कूल्ह ने अपने बनाये हुये कवित्त और छन्द भगवत् रणछोड़ जी को भेंट किये और छोटे भाई अल्ह ने अत्यंत लज्जा से शिर नीचा करके आंखों में आंसू भर लिये और अपने अपकर्मों का शोच करके विकल चित्त होकर दो चार कवित्त पढ़े। भगवत् उनके हृदय की अत्यंत प्रीति और लज्जा से

शिर नीचा किया हुआ देख कर प्रसन्न हुये और सावधान होकर अल्ह जी के कीर्तन पर हुंकारी भरने लगे। अभिप्राय यह कि हम सुनते हैं, कुछ और कहो। प्रश्चात् पुजारी को अपनी माला देने के लिये आज्ञा की। पुजारी माला पहिनाने लगा, तो अल्ह जी ने विनय की कि बड़े भाई इस कृपा के योग्य हैं, मैं अपराधी इसके योग्य नहीं हूं। पुजारी ने कहा कि इस दरबार में हृदय की प्रीति की बड़ाई छोटाई देखी जाती है और हम को केवल आज्ञा का पालन करना उचित है। यह कह कर पुजारी ने अल्ह जी के गले में माला पहिनादी। कूल्ह को अति दुस्सह हुआ और अपनी देहजनता समझ कर दुःखी होकर डूबने का मनोरथ करके समुद्र में कूद पड़े, मुख्य द्वारका में जा पहुंचे और भगवत् का दर्शन पा कर कृतार्थ होगये।

जब भोजन करने गये तब भगवत् ने आज्ञा की कि दो पनवाड़ों में पारस करो। कूल्ह जी ने पूछा कि दूसरा पनवाड़ा किस के लिये है? भगवत् ने कहा कि तुम्हारे छोटे भाई के निमित्त है, कूल्ह जी को सुनत ही फिर बड़ा दुःख हुआ। भगवत् ने कहा कि दुःख की कुछ बात नहीं है, तुम्हारा छोटा भाई मेरा परम भक्त है। बात यह है कि पूर्व जन्म में वह राजा था, राज्य छोड़ कर जंगल में मेरा स्मरण भजन किया करता था। संयोग वश एक राजा वहां आकर टिका, उसकी सजावट, भोग विलास, राग रंग आदि देख कर उसने उस सुख की चाहना की, इसलिये यह शरीर पाया है। अब वह तुम्हारे वियोग से खाना, पीना, सोना आदि सब छोड़ कर मृतक प्राय है, शीघ्र जाकर उसकी सुध ले! कूल्ह जी प्रसाद लेकर डेरे में पहुंचे तो वहां अल्ह जी को न पाया घर जाने के समाचार पाकर घर को चल दिये, अल्ह जी अपने भाई के वियोग में महा दुःखी होकर रोया करते थे। कूल्ह जी को कुशल पूर्वक आते हुये सुन कर अत्यंत हर्षित होकर आगे जाकर मिले, दण्डवत् किया और घर पर ले आये कूल्ह जी ने सब वृत्तांत कहा। दोनों भाई ऐसे प्रेम में पूर्ण हुये कि घर बार त्याग कर बन में चले गये और भगवत् भजन में शरीर समाप्त किया।

कुं— सच्चा मन का प्रेम लखि रीझत यादव राय।
प्रीति देखि कर अल्ह की अवगुण दिये बहाय॥
अवगुण दिये बहाय, माल अपनी पहिनाई।
संशय कीन्हा कूल्ह, मर्म सब दिया जनाई॥
कूल्ह अल्ह गुन गाय, विश्व जतलाती रच्चा।
भोला! भज विश्वेश, एक शाश्वत नित सच्चा॥

कथा जगन्नाथ जी की

थानेसर के रहने वाले जगन्नाथ जी परम भक्त और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के सेवक पार्षद सदृश हुये। इनके सेवक होने का यह वृत्तांत है कि तीन दिन तक महाप्रभु को अपने घर पर विराजमान देखा, उनके प्रताप का प्रभाव घर में प्रकट कर विश्वास युक्त हुये और सेवक होकर कृष्णदास नाम पाया परन्तु लोग कृष्ण नाम से पुकारते थे। बहुत काल तक मानसी पूजा और ध्यान करते रहे। एक दिन यह अभिलाषा हुई कि यदि अर्चा मूर्ति भगवत् की मिले तो स्थापन करके सर्वकाल सेवा पूजा में रहा करूं। भगवत् ने कृपा करके अपना स्वरूप एक कुएं में बतलाया। उसको लाकर स्थापन किया और सेवा पूजा में ऐसे लवलीन रहते थे कि रात्रि दिन भगवत् के शृंगार, रागभोग, उत्साह लाड़ लड़ाने में लगे रहते थे, इनके

सिवाय कुछ काम न था, इनके पुत्र का नाम रघुनाथ जी था, यह लड़कपन से ही ऐसा भक्त और प्रेमी हुआ कि भगवत् ने स्वप्न में उस को अपने प्रेम और भक्ति का एक श्लोक सिखला दिया।

कुं– सेवक प्रभु चैतन्य के, जगन्नाथ जी भक्त।
कीन्हा पूजन मानसी, रहे ध्यान आसक्त॥
रहे ध्यान आसक्त, मूर्ति पीछे पधराई।
राग भोग शृंगार, नित्य करि प्रीति बढ़ाई॥
पिता भक्ति लखि बाल, हुआ रघुनाथ उपासक।
भोला! भज श्रीकृष्ण, अन्य का हो मत सेवक॥

कथा रामदास जी की

रामदास जी द्वारका के निकट डाकौर के रहने वाले बड़े प्रेमी भक्त हुये। एकादशी व्रत बड़ी प्रीति से करके जागरण के लिये रणछोर जी के मंदिर में द्वारका जाया करते थे, जब वृद्ध हुये तो रणछोर जी ने आज्ञा दी कि अब तुम घर पर ही स्मरण भजन किया करो। रामदासजी ने यद्यपि आज्ञा मान ली परंतु जब प्रेम की तरंग उठती, तो बेवश होकर चले जाते। भगवत् से अपने भक्त का परिश्रम और राह के आने जाने का क्लेश न सहा गया। आज्ञा दी कि तुम एक गाड़ी ले आओ, हम तुम्हारे घर चलेंगे। रामदास जी अगली एकादशी को गाड़ी लेकर आपहुंचे। लोगोंने समझा कि बुढ़ापे के कारण गाड़ी पर आया है। द्वादशी के दिन रामदास जी बतलाये हुये भगवत् मंदिर में गये और रणछोर जी को गाड़ी पर सवार करके चले परंतु भगवत् के गहने मंदिर में छोड़ दिये प्रभात को पुजारी लोगों ने मंदिर खोला तो भगवत् को न पाया, समझ गये कि रामदास ले गये। सब पीछे दौड़े। रामदास जी को उनके आने से चिन्ता हुई। भगवत् ने कहा कि समीप ही एक बावड़ी है उसी में हम को छुपा दो। रामदास जी ने वैसा ही किया। जब वे लोग आये तो पहिले तो उन्होंने रामदास जी को मारा, पीटा, घायल कर दिया। जब गाड़ी में भगवत् को न देखा, तो बावड़ी रुधिर से भरी हुई देख कर बड़े चकित हुये। भगवत् ने कहा कि रामदास हमारी आज्ञा से हम को लाया है तुमने जो उसे मारा तो उस की चोट को हमने अपने शरीर पर रोका है इसलिये बावड़ी रुधिर से भरी हुई है, अब तुम लौट जाओ, हम तुम्हारे साथ न जायंगे। पुजारियों ने बड़ी प्रार्थना और करुणा से विनय की कि महाराज! यदि आप न चलेंगे, तो हमारी क्या गति होगी। भगवत् ने कुछ न सुना, बहुत कहते सुनते यह ठहरा कि भगवत् मूर्ति के बराबर सोना तोल कर लेलो। पुजारी इस बात को मान गये। रामदास जी ने कहा कि महाराज! मेरे घर इतना सोना कहां है। भगवत् ने कहा कि तुम्हारी स्त्री के कान में सोने की बाली है, हमारी तोल के बराबर वह ही बहुत है। जब सोने की बाली के साथ भगवत् मूर्ति को तोलने लगे, तो बाली वाला पलरा धरती पर हो गया और भगवत् मूर्ति वाला पालरा स्वल्पता से ऊंचा उठ गया। पुजारी लज्जित होकर अपने घर चले आये। रामदास जी ने भगवत् को अपने घर पर लाकर विराजमान किया और सेवा भजन करने लगे, हे मंसाराम! इस चरित्र से पूरट है कि राजा बली के यहां तो उसके बांध लेने के पीछे उसके यहां टिके और यहां रामदास जी के घायल होने के बाद टिके। यहां पर भगवत् के सदा रहने का यह चिह्न है कि अब भी भगवत् मूर्ति किसी दूसरे से नहीं उठती, जब रामदास जी के वंश का कोई उठाता

है, तो तुरन्त उठ आती है। मंदिर की मरम्मत के समय इस बात की परीक्षा होचुकी है।

कं— भगवत् रीझत प्रेम से, नहिं उपाय कुछ और ॥
रामदास के प्रेम वश, आये प्रभु डाकौर।
आये प्रभु डाकौर, त्याग दी पुरी पुरानी।
विनय पुजारिन कीन्ह, बात उनकी नहिं मानी ॥
भोला! भज रणछोर, वेद हैं जिस को गावत।
त्याग सकल व्यापार, याद रख केवल भगवत् ॥

घनश्याम-विनय।

[लं० श्री मदनगोपाल जी "सिंहल"]

तुमने भवसिन्धु से लाखों ही जीवों को तारा है।
भूल न जाना यदुनन्दन ये 'मदन' भी दास तुम्हारा है ॥

× × × ×

जब दुर्योधन की आज्ञा से वो दुःशासन अत्याचारी।
द्रुपदसुता को नंगी करने पकड़ लई वाकी सारी ॥
तब वो अबला हाथ जोड़ के होकर के व्याकुल भारी।
बोली 'आओ, आओ, आओ' कहां छिपे गिरवरधारी ॥
मध्य सभा नंगी होने में लाज न जायगी मेरी।
यहीं कहेंगे लोग भई नंगी यदुनन्दन की चेरी' ॥
सुनकर उसकी टेर शीघ्र ही आप द्वारका से धाये।
वस्त्र रूप हो द्रुपदसुता के चरणों में स्वामी आये ॥
समझ भक्त वत्सल मैंने भी तेरा लिया सहारा है।
भूल न जाना यदुनन्दन ये 'मदन' भी दास तुम्हारा है ॥

× × × ×

पैर पकड़ गज का जल भीतर ग्राह लगा जब लेजाने।
बल कर हारा छुटा न पाया तब गज लागा घबराने ॥
अन्त में ले एक कमल सूंडमें बोला गज, 'स्वामी आओ।
मैं पड़ा विपत में दुखभञ्जन इस दुखसे मुझे छुड़ा जाओ
ऐसे दुखों में भी स्वामी यदि नहीं बचाने आओगे।
तो दीनबन्धु कहलाने के हकदार नहीं कहलाओगे' ॥
सुन गज की टेर रमा को तुम ये रमा रमण तब भूलगये
गरुड़ छोड़ कर नंगे पैरों दौड़े सिन्धु कूल गये ॥
ग्राह मार कर गजको स्वामी तुमने वहां उबारा है।
भूल न जाना यदुनन्दन ये 'मदन' भी दास तुम्हारा है ॥

× × × ×

त्याग के भोजन दुर्योधन का आप विदुर घर जब आये।
बड़े प्रेम से विदुरानी ने तोहि आसन पै बैठाये ॥
केले लाई तुझे खिलाने प्रेम रंग में माती थी।
गिरी गिरी नीचे को गोरे छिलके तुझे खिलाती थी ॥
आये विदुर इतने में, कर को पकड़ कहा, 'देती छोले'।
विदुरानी भी चौंक पड़ी तब श्याम प्रभु तुम यों बोले ॥
'हाथ पकड़ कर भक्त विदुर इस समय आज तू चूका है।
भूख न भोजन की मन मेरा प्रेम भाव का भूखा है' ॥
प्रेम वश्य ही समझ प्रभु बस मैंने तुम्हें पुकारा है।
भूल न जाना यदुनन्दन ये 'मदन' भी दास तुम्हारा है ॥

× × × ×

सिया हरी दशकन्धर ने तब उसे खोजने तुम धाये।
भ्राता लक्ष्मण सहित राह में शबरी के आश्रम आये ॥
मगन भई अति देख एक आसन पै तुमको बैठा कर।
कन्द मूल फल भोजन के हित धरे तेरे आगे लाकर ॥
देख प्रेम शबरी का तेने कुछ फल फूल उठा लीने।
लख शबरी की ओर प्रेम से मुंह से उन्हे लगा लीने ॥
बोले, 'कौशल्या का नन्दन अब शबरी हुवा तुम्हारा है।
क्योंकि यह सब ही जानते हैं मुझ को तो प्रेम पियारा है'।
यही समझ कर मैं भी आया तुमको प्रेम पियारा है।
भूल न जाना यदुनन्दन ये 'मदन' भी दास तुम्हारा है ॥

काम से राम अत्यन्त दूर है

(१२ वें अंक से आगे)

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

पाठको ! वही आभास सिंह नामक जीव है, चेतन सिंह नामी कूटस्थ है और निरंकुशी रूपी सुबुद्धि इस की स्त्री है। शुद्ध बुद्धि पर पड़े हुवे कुटस्थ का आभास सहित बुद्धि और कूटस्थ तीनों मिल कर जीव कहलाते हैं। यही कर्ता भोक्ता दुःख सुख वाला है। अगर विचार के देखें तो आभास भी कर्ता भोक्ता नहीं है। जब अज्ञान से काम के वश हो फरफंदी रूपी अविद्या के काबू में आया तभी सुखी दुःखी हुआ, तभी चेतन सिंह रूपी जगत पिता परम ब्रह्म परमात्मा के अंक यानी गोदमें बैठा। वह अविद्या अज्ञान से उत्पन्न होती है वह अज्ञान सिंह रूपी अज्ञान है। जहां अविद्या है तहां विद्या नहीं, जहां विद्या तहां अविद्या नहीं रहती यह नियम है। जहां अंधकार है वहां सूर्य नहीं जहां सूर्य तहां अंधकार नहीं। फरफंदी रूपी अविद्या के आने से उसके दबाव में आजाने से जीव अल्पज्ञ हुआ और विद्या रूपी निरंकुशी को निकाल दिया। तबतो फरफंदी रूपी अविद्या ने आभास सिंह रूपी आभास की सत्ता से ही अनेक सन्तान अहंकार, काम, क्रोध, लोभादि, दुःख, सुख, वैर, छल, मान, आदि उत्पन्न हुए जिनका वर्णन करना अशक्य है और आभास सिंह रूपी जीव को काबू में कर लिया। कभी विचार करने को सिर भी ऊंचा न होने दिया। तब तो वह बड़ा दुःखी हुआ तो आतुर हो तीव्र जिज्ञासा रूपी वैराग्य शान्ति रूपी निरकुंशी का स्मरण किया, यही निरकुशी रूपी स्त्री निरंकुश तृप्ति चिदाभास की सातवीं अवस्था है जिसको परम शान्ति भी कहते हैं इसी के मुख से सज्ञातीय वृत्ति रूपी लाल निकलते हैं तब वैराग्य की दृढ़ता से बोधसिंह रूपी अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ और जिससे सारा कुटुम्ब यानी कारण अज्ञान सहित प्रपंच का नाश हुआ। अज्ञान सिंह अज्ञान है सो कारण है और फरफंदी रूपी अविद्या है। तत्पश्चात् बोध सिंह रूपी अपरोक्ष ज्ञान से असत्वा पादक आवरण दूर हुआ और बोधसिंह ने कुम्हार रूपी सद्गुरु द्वारा निरंकुशी को प्राप्त किया। प्राप्त होते ही सुख पूर्वक अविचल शान्ति को प्राप्त हो जीवन्मुक्त हुआ शरीर रहते हुए भी अमरपद को प्राप्त हुआ। यही चेतन सिंह रूपी परम धाम पिता नाम जनक है जहां से पुनः आवृत्ति नहीं होती। धन्य गुरु, धन्य गुरु, धन्य गुरु तेरे समान हित कर कौन है कोई उपमा भी नहीं है उपमा देना भी बेसमझी है।

पाठको ! लाल के लिये तो दिल फड़क गया होगा लाल मिलेगा तुम्हारी गांठ में बन्धा है परन्तु जब काम का मुंह काला कर भगावें तब लालों से झोली पावें। समझ लीजिये असमझ को छोड़ कर इस काम ने ही फरफन्दी रूपी अविद्या को वशीभूत किया। अगर अपने साथियों यानी अभय सत्व, संशुद्धि,

आदिकी मान लेता तो भी कुछ अच्छा रहता। बिल्कुल बेहोश तो तभी हुआ जब इनकी भी आसक्ति छोड़ी। व्यवहार मात्र (प्रतीति मात्र) इनसे सम्बंध किया ऐसे ही सब जीवमात्र को जगत् पिताने सैर करने के लिये संसार रूपी बगीचे में भेजा है हर समय याद रखना चाहिये खरचा भी योग्यता नुसार दिया है। जैसे लोक में भी अपने पुत्र को मेले तमाशे में भेजते हैं तो योग्यतानुसार प्रबन्ध करके भेजते हैं और बार २ समझा देते हैं कि शीघ्र मेला देख कर लौट आना कहीं मेले में ही अटके न रह जाना। इसी तरह वह तो जगत पिता है उसने भी प्रबन्ध करके ही भेजा है, टोसा पीठ से बांध दिया है परन्तु अंधे मुह फेर के देखते तो हैं नहीं और जानते हैं कि हम आगे से करते हैं तब खाते हैं। बस का कथन मात्र करते हैं ईश्वर करेगा सो होगी पर निश्चय नहीं है। मनुष्य के सामने बुराई करते डर जावेगा परन्तु ईश्वर को सर्वव्यापी कहते हुए भी कुछ परवाह नहीं ऐसों के लिये तो शास्त्र गुरु का उपदेश गज स्नान तुल्य जानों किसी ने कहा है:-

छाख पढ़ाए पींजरा पढ़ गए चारों वेद।
जब सुध आई कुटुम्ब की रहे ढेढ़ के ढेढ़॥

भाई समझलो वोही चूलि फूंका, जब संसारासक्ति करो तब ईश्वर भजन नहीं, जब ईश्वर भजन है तब संसारासक्ति नहीं।

दोहा- जब मैं था तब हरि नहीं जब हरि तब मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी तामे दो न समांहि॥

इनकी बात को छोड़ो अब ऐसा बारंबार विचार, जगत पिता के ऊपर शरीर मात्र का भरोसा कर निर्द्वन्द्व हो, निर्द्वन्द्व जरूर होना चाहिये क्योंकि लौकिक पिता के भरोसे वाले निर्द्वन्द्व होते हैं तो ईश्वर पर भरोसा वाले हाजावें तो इसमें कहना ही क्या है यानी कोई बड़ी बात नहीं। कैमुतिक न्यायवत् अब अपनी ऐसी स्थिति कर लोगे तब जगत् पिता के भरोसे वाले भी जाबजा मिलेंगे मसल मशहूर है:-

साधू से साधू मिले मिले नीच से नीच।
पानी से पानी मिले मिले कीच से कीच॥

बस समझ लीजिये यह काम ही फंसाने वाला और राम ही छुड़ाने वाला है काम को छोड़ो राम को भजो। सत्य बोल पूरा तोल जी चाहे तहां डोल। सत्य राम ही है पूरा भी राम ही है इससे अतिरिक्त सब असत्य ही है और अधूरा ही है।

पाठको! अब सुख निद्रा में शयन करते हैं आपकी सुरुचि से जिज्ञासा होगी तब तो फिर भी लम्बे चोड़े हाथ फेंकेंगे नहीं तो नहीं। बोलो एकबार प्रेम से जय हरे!

सत्यसुख और उसकी खोज

[ले० एक जिज्ञासु]

सुख का सत्य के साथ बड़ा ही ऐक्य और तद्रूपता का सम्बन्ध है। जो सत्य है, वह कभी दुःख रूप नहीं हो सकता, और, जो असत्य है वह न कभी सुख रूप। जो वस्तु सत्य है वही सुखमय है, और जो सुखमय है वही सत्य। सत्य से दुःख की और असत्य से सुख की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। इसलिये सुख की खोज करने के लिये सब से पहले हमें सत्य का पता लगाना होगा। जब तक हमें इस बात का ज्ञान नहीं होगा, कि, सत्य क्या है और असत्य क्या, तब तक सत्य सुख की प्राप्ति हमारे लिये कठिन

हो नहीं वरन् असम्भव है।

हम लोग प्रायः अपने अज्ञान से, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, एवं स्त्री-पुत्र धन-मकान आदि असत् पदार्थों में सत्य सुख की कल्पना कर लेते हैं, यही कारण है कि आजीवन हमें सुख का एक विंदुमात्र भी नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत सर्वदा अपने को दीन दुःखी और अशांत पाते हैं। इस पर कितने ही लोग यह कह सकते हैं कि स्त्री, पुत्र, धनादि की प्राप्ति में सुख अवश्य होता है नहीं तो लोग इन वस्तुओं का संग्रह ही क्यों करते। परन्तु यदि विचार पूर्वक विवेक-बुद्धि से इस बात का पता लगाया जाय तो हमें मालूम होगा कि धनादि पदार्थों में जो एक प्रकार का सुख प्रतीत होता है, वह वास्तव में सत्य, अथवा इन वस्तुओं की प्राप्ति से उत्पन्न, नहीं होता। वह तो लक्ष्य के प्राप्त होने पर उस वस्तु की प्राप्ति के लिये हमारे हृदय में जो एक प्रकार की उत्कट कामना रूपी अग्नि प्रज्वलित रहती है, उसके शान्त होने के कारण एकबार कुछ काल के लिये शान्ति का आभास मात्र मिलता है जो कि स्थाई नहीं रहता। शीघ्र ही कामना अपना भीषण रूप धारण करके सुख की उस सीमा को उल्लंघन कर हमारे अन्तःकरण को पुनः पूर्ववत् दुःखी और अशांत कर देती है। उदाहरणार्थ सब प्रथम धन को ही ले लीजिये। क्योंकि अधिकांश लोग सुखात्मक वस्तुओं में सब से पहिला स्थान धन को ही देते हैं। पहले पहिल मनुष्य अन्न वस्त्र का कार्य्य सुचारू रूप से चला जाय बस इतनीसी ही अकांक्षा करता है। परन्तु जब उसके पास कुछ २ संग्रह होने लगता है तब अपने से अच्छी स्थिति वाले लक्षाधीश धनवानों को अधिक सुखी मानकर (यद्यपि वास्तव में वे उससे अधिक सुखी नहीं होते) अपनी उस अवस्था को जो (कामना के अभाव में) उसके लिये सब प्रकारसे सुख कर है दुःख पूर्ण समझने लग जाता है, और लक्षाधीश बनने के लिये येन केन प्रकारेण (चाहे उसकी प्राप्ति के लिय झूट, कपट, छल आदि कुछ भी कुकृत्य करने पड़ें) तत्पर हो जाता है। प्रथम तो उसकी यह आकांक्षा ही पूरी नहीं होती, क्योंकि यह कार्य्य प्रारब्ध पर निर्भर करता है। इसके लिये चाहे कितना ही यत्न किया जाय, कितना ही पाप का गट्ठर सिर पर लादा जाय, कुछ नहीं होता। यदि दैव संयोग से पूर्व जन्म के प्रारब्ध कर्मानुसार पूर्ण हो भी जाय तो, कामना के द्वारा उसकी पुनः वैसी ही अवस्था होजाती है, जैसी कि पहले लक्षाधीश बनने के लिये हुई थी। अब वह करोड़ाधिपतियों को देख कर अपने इन लाख रुपयों में कुछ भी सुख नहीं समझता। इसी प्रकार हजारों लाखों करोड़ों और अरबों की उत्तरोत्तर संख्या बढ़ती ही चली जाती है किसी भी अवस्था में वह पर्य्याप्त धन प्राप्त करके मैं सुखी होगया ऐसा नहीं मानता और यदि किसी कारण से इस क्रमोन्नति में एक सीढ़ी नीचे की ओर उतरनी पड़जाय, हजार से लाख और लाख से करोड़ होने पर निन्नानवे लाख की क्षति होकर पुनः लाख ही रह जाय, तबतो दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ता है। वे लाख रुपये जो किसी समय निर्धन अवस्थायें बड़े ही अलभ्य और सुखदायी प्रतीत होते थे, आज उलटे दुःखदायी बन जाते हैं यही बात स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि अन्य सांसारिक विषयों में भी घटित होती है। जो वस्तु अल्प है, किसी एक देश में कभी २ मिलती है, उत्पत्ति और विनाश धर्म वाली है जिसकी सर्वदा कमी और अधिकता होती रहती है, वह कभी भी सत्य नहीं

हो सकती। जो वस्तु असत्य है वह कभी स्थाई नहीं रहती। इसके संयोग का वियोग अवश्य होगा इसलिये इन वस्तुओं के संयोग में हम जितना ही अधिक सुख मान लेंगे उसका वियोग अवश्य ही हमारे लिये उससे अधिक दुःखदायी होगा। अस्तु जो वस्तु सब देश में, सब काल में, सर्वत्र विद्यमान् है वही सत्य है। जिसको कभी उत्पत्ति और संहार नहीं होता, तथा जो परिवर्त्तन से रहित है वही सत्य है। यह सम्पूर्ण जगत् जिससे उत्पन्न हुआ है, जिसमें विलीन हो जायगा, वही सत्य है। इस दृश्य-मात्र सम्पूर्ण जगत् के विलीन होजाने के बाद जो कुछ भी शेष रहता है, वही सत्य है। सत्य ही आनन्द मय ब्रह्म है। सत्यही अभय तथा अमृत है। सत्यही अक्षय और ऐकांतिक सुख का परम पावन स्थान है। जब तक मनुष्य इस उपर्युक्त सत्य की उपलब्धि नहीं करलेता तब तक उसका संसार के जन्म-मरण, रोग-शोक, पाप-संताप, जरा-व्याधि आदि महान् कष्टों से कभी भी परित्राण नहीं होसकता। इसलिये सबसे पहले इस सत्य सुख को प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि यही हमारे मानव जीवन का सबसे पहिला उद्देश्य है, यही हमारे मानव जीवन की सफलता है, यही हमारे लिये सब से बड़ा लाभ है और यही हमारे लिये सब से बड़ा आवश्यक कार्य है। अन्य दूसरे सम्पूर्ण कार्य्यों की त्रुटि से हमारी इतनी कुछ भी हानी नहीं होसकती, परन्तु यदि इस सत्य सुख की प्राप्ति नहीं होसकी और मानव जीवन समाप्त होगया, तो हमारे लिये इससे बढ़कर कोई भी हानि नहीं। श्रुति का यह वाक्य हमें इस कार्य्य के लिये कितना सचेत कर रहा है।

इह चेदवेदीदथसत्यमस्ति नोचेदिहावेदीन् महती विनष्टी।

अर्थात् यदि तुमने मृत्यु के आने से पहले इस सत्य को जान लिया, तो ठीक अपने कर्त्तव्य का पालन कर लिया और यदि प्रमाद और आलस्य के वशीभूत हो कर कार्य्य की पूर्ति नहीं की तो तुमने बड़ी ही भूल की। तुम्हारे लिये तो सर्वनाश ही होगया, क्योंकि तुम्हें यह मनुष्य शरीर बड़े ही सौभाग्य से मिल गया था। इसके द्वारा तुम सहज ही अनन्त आनन्द को प्राप्त कर आनन्दमय हो सकते थे, पर अब तो तुम्हारी इस भूल ने तुम्हें सदा के लिये संसार रूपी दुःख के समुद्र में फेंक दिया।

प्रायः कितने ही लोग इस सत्य सुख की प्राप्ति को बड़ी २ तपस्याओं, कष्ट साध्य साधनों एवं कठिन परिश्रम का फल समझ इसे अपने लिये असाध्य मान लेते हैं। पर यह मानना उनका केवल अज्ञान और भ्रममात्र है। वे अभी इस विषय को कुछ भी नहीं जानते लोग सांसारिक पदार्थों के लिये जितना प्रयत्न किया करते हैं, इस कार्य्य के लिये यदि उतना भी प्रयत्न किया जाय तो सहज में ही सफल हो सकता है। सांसारिक पदार्थों के लिये तो फिर भी नाना प्रकार के कष्टों का, विघ्न-बाधाओं का सामना करना ही पड़ता है। परन्तु इस कार्य्य का प्रारंभ ही मनुष्य के हृदय में आनन्द का स्रोत उत्पन्न कर देता है जिसमें बहता हुआ वह सुख पूर्वक शीघ्र ही अनायास आनंद के अगाध समुद्र में निमग्न हो जाता है। इसके लिये दुःख-कष्ट को किंचिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं। इसके लिये तो आवश्यकता है उत्कट आकांक्षा की तत्परतापूर्ण अन्वेशण की। फिर तो परमात्मा के द्वारा स्वयं ही उसे ऐसी शक्ति मिल जाती है जिससे शीघ्र ही उस सत्य को जान कर सत्य-सुख की उपलब्धि कर लेता है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने स्वय

गीता में कहा है।

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते" ॥

अर्थात् निरन्तर मुझ सत्य स्वरूप परमात्मा के अन्वेषण में लगे हुए, प्रेम पूर्वक मेरी प्राप्ति की आकांक्षा से भजने वाले उन सत्य-प्रेमी भक्तों को मैं ऐसी बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति देदेता हूं जिससे वे स्वयं ही सुख पूर्वक मुझ सत्य स्वरूप आनन्द-घन परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

यह नियम की बात है साधन से साध्य वस्तु विभिन्न नहीं होती। सुख प्राप्ति का साधन दुखात्मक कभी नहीं हो सकता। सुख तो सुख से ही मिलेगा वैसे नहीं जिस वस्तु के लिये हमें दुःख उठाना पड़ता है वह सुख रूप कभी नहीं हो सकती। सत्य सुख का मार्ग बतलाने वाले श्रीगीता आदि सभी शास्त्रों में सत्य सुख के लिये जगह २ "सुसुखं कर्तुम्' 'सुखेन अत्यंतं सुख मश्नुते' आदि शब्द ही मिलेंगे। 'दुःखेन कर्तुं' ऐसा वाक्य कहीं नहीं मिलेगा।

अतएव प्रिय पाठक वृन्द यदि आप वास्तव में सुखी होना चाहते हैं और यदि चाहते हैं सदा के लिये दुःखों से परित्राण तो सम्हलकर उठजाइये, मोहमयी निद्रा का परित्याग कीजिये, और लग जाइये सत्यान्वेषण के सहज सुखमय कार्य्य में। फिर जहां आपको सत्यसुख का थोड़ासा भी रसास्वादन मिला कि आप इस लेख के एक २ अक्षर को सत्यमान कर स्वयं ही कह उठेंगे।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं, सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृत सत्य नेत्रं, सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥

अजन्मा का जन्म

[ले० भक्तरत्न श्री मथुराप्रसाद जी]

श्रद्धाराम और वितंडा प्रसाद दो विद्यार्थी एक बड़े कालिज में एम० ए० क्लास की पढाई पढ़ रहे थे, दोनों में स्नेह तो अधिक था परन्तु विचार दोनों के भिन्न भिन्न थे। अवकाश पाकर एक दिन आपस में इस प्रकार विचार करने लगे।

श्रद्धारा०-भाई साहिब! भद्र पुरुषों से नन्द ग्राम की श्री कृष्ण जन्माष्टमी की प्रशंसा बहुत सुनी है। अतः मेरी इच्छा है कि कभी इस वर्ष तो नन्दग्राम की कृष्ण जन्माष्टमी देखें। कहो आप की क्या राय है।

वितं-मित्र तुम्हारे साथ चलने को जी तो चाहता है परन्तु जहां का नाम तुम ने लिया वहां के लिये नहीं। चार पांच दिन का समय बितावें तो किसी ऐसी जगह चलें जहां आनन्द मिले। एक गांव में जाकर ग्रामीण मूर्ख मण्डल में समय खोना सर्वथा व्यर्थ होगा। भाई। किसी रियासत में चल कर बड़े राजा महाराजा की सालगह के जल्से में शरीक होना या शिम्ले मंसूरी आदि की तरफ चल कर अंग्रेजी खेल थियेटर देखने को कहते तो मैं झट ही तैयार होजाता। कृष्ण किरिष्ण के जन्म का क्या देखना। वह तो अनपढों का काम या सिर्फ पोपलीला है, मैं पसन्द नहीं करता।

श्रद्धा०-(चौंक कर) हैं मित्र! आज तो

तुम्हारे मुख से अद्भुत अमृत की वर्षा हुई, मैं आप को ऐसा नहीं जानता था। (चुप हो जाता है)

वितं०-मित्र ! मैंने अचम्भे की बात क्या कही, चुपके क्यों होगये, कुछ कहो तो ?

श्रद्धा-तुम ने भाई ! अपनी पसन्द की बात कही सो तो ठीक पर हमारे इष्ट देव भगवान् कृष्ण का नाम ऐसी तरह लिया जिसे सुन कर चित्त दुःखी होगया अब अधिक बात चीत करने को जी नहीं चाहता।

वितं-भाई साहब ! क्षमा करो मुझ से असभ्यता हुई परन्तु बुरा न मानो तो कुछ प्रश्न कर के अपने संदेह की निवृत्ति करलूं ?

श्रद्धा०-निस्सन्देह प्रश्न कीजिये मैं यथा शक्ति आप का समाधान करूंगा।

वितं०-सुनो मित्र ! तुम कृष्ण जी को इष्ट देव और ईश्वर मानते हो वोह तो मनुष्य की तरह देवकी के गर्भ में रहे फिर कंस के भय से गोकुल में नन्दगोप के घर पहुंचाये गये। ईश्वर तो अजन्मा है और सर्वशक्तिमान् है उसे किसका भय। यदि वो ईश्वर थे तो माता पिता के जेल में जाने की नौबत क्यों आने दी ? कंस को उसी समय मार क्यों न दिया। मारना जिलाना तो ईश्वर के हाथ में ही है। इसके उपरान्त ईश्वर को वेद ने निराकार निर्गुण कहा है उस के विरुद्ध उसका मछली, कछवे, शेर या मनुष्य की सूरत बतलाना क्यों कर मानने योग्य है। वह अपनी इच्छा से सब कुछ कर सकता है, उसे दुनिया में सूरत बना कर आने की क्या जरूरत ? मेहरबानी करके इन बातों का उत्तर देकर मेरा समाधान कर दीजिये और यह भी समझा दीजिये कि सर्वव्यापक ईश्वर को एकदेशी मानने में उसके महत्व को घटाना कैसा है क्या बड़ी चीज को छोटा मानना उसकी हतक करना नहीं है ? यदि आप मेरा समाधान करदेंगे तो आज से मैं आपको गुरू मान लूंगा अन्यथा आपको मेरा चेला बनना पड़ेगा।

श्रद्धा०-भाई यह शर्त तो मुझे मंजूर है। परन्तु प्रश्न तुम्हारे यथाक्रम नहीं हैं, क्रम यों होना चाहिये (१) ईश्वर वेद प्रमाण के अनुकूल निराकार निर्गुण ही है या साकार सगुण भी है। (२) व्यापक ब्रह्म को एक देशी मानने में उसके महत्व की हानि है या नहीं। (३) ईश्वर को अवतार लेने की क्या जरूरत (४) अजन्मा का जन्म कैसा (५) कृष्ण को ईश्वर मानने में क्या प्रमाण और युक्ति है। बस इन्हीं पांच प्रश्नों के उत्तर होने चाहियें या और कुछ।

वितं०-हां हां भाई साहिब ! मेरा सब अभिप्राय इन्हीं में आगया आप इसी क्रम से व्याख्या कीजिये।

श्रद्धा०-लीजिये सावधान होकर सुनिये।

(१ वेद में ईश्वर के दोनों रूप वर्णन किये गये हैं निराकार भी साकार भी। "सहस्रशीर्षा पुरुष" इत्यादि अनेक श्रुतियों में ब्रह्म को हज़ारों सिर वाला हज़ारों नेत्र वाला कहा गया है। और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुति में तो जो कुछ चराचरसृष्टि में दीख रहा है सब को ब्रह्म रूप ही बतलाया है।

इसके उपरान्त सृष्टि क्रमका जहां वर्णन किया है वहां वेद कहता है कि 'आत्मनः आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापः' इत्यादि अर्थात् परमात्मा से आकाश, आकाश से वायु,वायु से अग्नि

अग्नि से जल उत्पन्न हुए। तो यह नियम है कि कारण और कार्य एक जाति के होते हैं यदि कारण निराकारा है तो कार्य साकार कैसे होगा।

इस के उपरान्त वेद कहता है कि 'पश्यत्य-चक्षुः सशृणोत्यकर्ण इत्यादि' यानी बिना आंखों के देखता और बिना कानों के सुनता और बिना पैरों के दौड़ता है। तो निराकार व्यापक वस्तु में क्रिया क्यों कर होसकती है। इसलिये मानना पड़ेगा कि वेदों में परमात्मा के दोनों रूप वर्णन किये गये हैं, निराकार और निर्गुण भी और साकार सगुण भी।

(२) दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनो, बड़ी व्यापक वस्तु को छोटी और एकदेशी कहने में उसके महत्व की हानि होती है जैसे घोड़े को टट्टू या बड़ महल को झोंपड़ी कह देना, परन्तु विचार करो अग्नि विशेष बिजली हरएक चीज में मौजूद है जल, मिट्टी, हवा, आदि कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसमें बिजली न हो। इसलिये कहना होगा कि बिजली रूप से अग्नितत्व व्यापक और महान् है, अब हमारे पास ईंधन मौजूद होने पर भी अग्नि नज़र नहीं आती तब एक दिया-सलाई के रगड़ने से अग्नि प्रकट होजाती है। ऐसी स्थिति में व्यापक और महान् अग्नि के महत्व में इससे कुछ भी हानि नहीं हुई, और कार्य सिद्ध होगया। इसी प्रकार ब्रह्म यद्यपि सर्वत्र व्यापक है परन्तु सामान्य व्यापकता से न दृष्टि गोचर होता है और न उस से कोई काम निकलता है, जब वह कार्य वशात् किसी विशेष रूप में प्रकट हो जाता है तो दुष्टों का दमन और सुजनों की रक्षा होजाती है इस से उसके महत्व में हानि कुछ नहीं होती, प्रत्युत महत्व बढ़ जाता है।

(३) तीसरे प्रश्न का उत्तर सुनिये।

एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल मंत्री से प्रश्न किया कि तुम हिन्दू लोग उस अजन्मा, ईश्वर, व सर्वशक्तिमान् का अवतार मानते हो यह बड़ी भारी भूल है। उसकी आज्ञा में सारा प्रपंच है, वह उस के द्वारा सब कार्य कर सकता है उसे खुद इन्सान या हैवान का रूप बना कर दुनियां में आने की क्या आवश्यकता है?

बुद्धिमान् मंत्री ने अर्ज किया कि इस का उत्तर अभी नहीं दे सकता छः महीने की मोहलत मिले तो देसकता हूं। मोहलत मिलगई। इन्हों ने इस अन्तर में एक रबर का बालक ठीक उसी कद और सूरत का बनवाया जैसा कि बादशाह का एक शहज़ादा धाय के पास परवरिश पारहा था। पांच मास बीतने पर आये। तब धाय को अपने में मिलाकर यह कौतुक रचा, कि बादशाह साहिब दरिया की सैर को नौका में विराज कर एकदिन पधारें और साथ में धाय को भी शहज़ादे सहित चलने का हुक्म दिया, बीरबरने उस समय असली शहज़ादे की जगह नकली बच्चा धाय की गोद में दे दिया, और अच्छे २ मल्लाहों को साथ लिया जब नाव दरिया के बीच गहराई में पहुंची तो बादशाह साहिब की गोद में जाने की ग़रज़ से धाय की गोद से बच्चे को ले आने की कोशिश करते हुए अपनी गलती दिखाई कि बच्चा बीरबल की गोद में आते आते चमका और उछल कर दरिया में जा पड़ा।

अब तो हाहाकार मच गया, बादशाह को यह बच्चा निहायत अज़ीज़ था उन से कुछ नहीं बन पड़ा और नहीं किसी मल्लाह को हुक्म दिया। आप तैरना खूब जानते थे खुद दरिया में फुर्ती से कूद कर बच्चे को ले आये, डूबने नहीं दिया, परन्तु जब

खिलाने लगे तो भेद खुल गया। अब तो क्रोध में भर गये, और लाल नेत्र करके वज़ीर से कहने लगे अरे बेहूदे नालायक यह क्या बात है तूने इस वक्त मौत की सज़ा के क़ाबिल यह काम किया है। जल्द बता तुझे क्यों न क़त्ल किया जाय? बीरबल ने हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से अर्ज़ किया कि हुज़ूर मैं क़सूर वार ज़रूर हूं लेकिन हुज़ूर के साथ बड़े बड़े तैराक आप के हुक्म में मौजूद थे उनको हुक्म क्यों न दिया गया खुद आप को दरिया में कूदने की क्या ज़रूरत थी, बादशाह और भी नाराज़ होकर बोले अबेगुस्ताख़ मरने का ख़ौफ़ नहीं! उलटा हमसे ही सवाल करता है! भला ऐसे प्यारे बच्चे की जानके ख़तरे के वक्त इतनी बर्दाश्त किससे हो सकती है कि किसी दूसरे को हुक्म दिया जाता! अगर मैं तैराक न होता तो शायद ऐसा भी करता। वज़ीर ने उसी समय सलाम करके कहा कि हुज़ूर के सवाल का जवाब हो चुका खुद हुज़ूर ने ही फैसला कर दिया हम हिन्दुओं के खुदा का यही हाल होता है जब वह देखते हैं कि उसके प्यारे भक्त की जान ख़तरे में है तो उससे नहीं रहा जाता चाहे जिस सूरत में नमूदार होजाते हैं।

यह जवाब सुनते ही बादशाह का क्रोध नष्ट हो गया और बीरबर से कहा, बेशक जवाब माकूल है लेकिन तेरी हिम्मत की भी दाद दिये बगैर हम नहीं रह सकते शाबाश! यह तीसरे प्रश्न का उत्तर हो चुका।

(४) अजन्मा के जन्म के बारे में गीता के यह श्लोक ध्यान में लाने योग्य हैं:-

अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्म मायया॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

स्वयं भगवान् आज्ञा करते हैं कि मैं अजन्मा और अविनाशी होने पर भी और सब का स्वामी हूं तो भी अपनी माया शक्ति को आश्रित करके प्रकट होता हूं, जब जब धर्म पर संकट और पाप की वृद्धि होती है तब तब मैं साधुओं की रक्षा और दुष्टों के दमन के अर्थ युग युग में प्रकट होता हूं। जब ईश्वर सर्व शक्तिमान है तो अजन्मा होने पर भी धर्म की रक्षा के लिये आविर्भूत हो जाना उसकी इच्छा पर निर्भर है। और सब भूतों में जब वह विद्यमान है तो चाहे जिस सूरत शक्ल में प्रकट होजाय उस पर कोई आक्षेप नहीं हो सकता।

(५) अब श्रीकृष्ण भगवान् के विषय में विचार कीजिये। श्रीमद्भागवत् में जहां इनका चरित्र लिखा है उस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि न वह देवकी माता के गर्भ में साधारण रीति अनुसार आये न उन का जन्म प्राकृत मनुष्यों की तरह पर हुआ पहले वसुदेव जी को ऐसी प्रतीति हुई कि कोई महान् तेज उनके शरीर में प्रविष्ट हुआ। फिर देवकी माता को ऐसा ही भान हुआ और जन्म के समय की उपमा पूर्व दिशा से चन्द्रमा के उदय होने की दीगई है। जैसे चन्द्रमा पूर्व दिशा से उदय होता है तो न दिशा में कोई विकार आता और न चन्द्रमा विकृत होता है। इसी प्रकार वह सब में व्यापक परम तेज विकाश को प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु जन्मके समय आपने शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए माता पिताको दर्शन देकर उपदेश किया और उनके पूर्व जन्मों की कथा

सुना कर अपने अवतार लेने का कारण बतलाया। फिर माता की प्रार्थना करने पर प्राकृत शिशु का रूप धारण कर लिया, यदि उनका शरीर पंचभौतिक होता तो गर्भ से बाहिर आते ही कोई प्राकृत बालक इतना काम नहीं कर सकता न आयुधों समेत गर्भ में रह सकता है, न जन्मते ही उपदेश करने की योग्यता संभव है। दूसरे उनके शरीर का अप्राकृत होना इस प्रकार भी सिद्ध होता है कि उस पर न किसी विषय आदि मोहक पदार्थ का असर होता था, न शास्त्रों का आघात कोई विकार उत्पन्न कर सकता था। त्रिणावर्त, अघासुर, बकासुर आदि महाबली राक्षसों का वध, कालीनाग का दमन आदि अनेक लीलाओं से तथा महाभारत के समय अर्जुन के रथवान होने की दशा में भगवान् के शरीर पर शस्त्रों की भरमार होने पर भी कोई असर न होने से साफ प्रकट है कि उनका शरीर भौतिक नहीं था, दिव्य अप्राकृत था। रहा यह आक्षेप कि कंस के भय से गोकुल क्यों गये। तत्क्षण ही कंस को मार क्यों न दिया इस का भी उत्तर सुनिये। सर्वशक्तिधारी कृष्ण मुरारी ने जब माता पिता को चतुर्भुज रूप से आयुधों को लिये हुये दर्शन देकर उपदेश करते हुये अपने अवतार लेने का कारण भी बतला दिया तो वसुदेव जी तथा देवकी जी को यह निश्चय तो अवश्य हो गया कि यह साक्षात् विष्णु भगवान् हैं परन्तु स्त्री स्वभाव से माता ने प्रार्थना की कि हमको कंस दुष्ट का अत्यन्त भय लगता है, आप इस रूप को तिरोहित करलेवें, उस समय आप ने आज्ञा की 'कि यदि तुम्हें डर हो तो मुझे गोकुल पहुंचा दो। नन्द यशोदा को भी पूर्व जन्म में वरदान दे चुके थे' तदनुसार बाललीला का आनन्द उन्हें भी तो देना था। और यह जो ईश्वरीय नियम है कि जब तक शुभ अशुभ कर्मों का भोग प्राणी नहीं कर लेता उसका शरीर नष्ट नहीं होता इस के निभाने के लिये कंस का तत्काल वध न किया गया। जब उस शरीर से पूर्व जन्मार्जित पुण्य पाप का फल कंस भोग चुका तब ही मारा गया।

वित्तं०—(गद्गद् होकर श्रद्धाराम के चरणों में गिर कर) भाई साहिब! आप धन्य हो आपको मैं आज से गुरु स्वीकार करता हूं आपने बड़ा भारी उपकार किया कि मेरे सब संशय निवृत्त कर दिये! मुझे श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र में अब पूरी श्रद्धा होगई, अब उनके दर्शनार्थ अवश्य तुम्हारे साथ नंदगाम चलूंगा। यह बात चीत करते हुए दोनों मित्र उस स्थान से अपने अपने घर चले गये।

ईश्वर-प्रार्थना।

[ले० श्री गौरीशंकर गुप्ता]

जपो जगदीश को हरदम, वही प्रभु मुक्ति दाता है।
वही पालन करै सबका, वही पितु बन्धु माता है ॥१॥
सिवा उस के नहीं कोई, तुम्हारा मित्र दुनियां में।
समझलो खूब अजमालो, सभी स्वारथका नाता है ॥२॥
करो अभिमान मत धनका यह है बादल की परछाईं।
सम्हालो धर्म अपने को, वही एक साथ जाता है ॥३॥
पड़े गफलत में मत रहना, जो करना हो सो करलेना।
निकाले जाओगे जबरन, अभी वह काल आता है ॥४॥
कभी ईश्वर को मत भूलो, तुम्हारा है वही रक्षक।
वही सब कष्ट हरता है, वही सबका विधाता है ॥

— —

भक्ति ।

[ले० एक प्रेमी]

प्रकृति-नटी की नाट्यशाला रूपी संसार में सैकड़ों मनुष्य पात्र अपना अपना पार्ट दिखा कर अनन्त के गर्भ में लीन हो जाते हैं, ऐसे लीन कि उनका नाम भी कोई नहीं जानता। अपने नाम को अक्षुण्ण रखने के लिए पात्र को असाधारण प्रतिभा सहित अपना पार्ट करना पड़ता है। वह जन-साधारण से दूर ही रह कर अपनी विशेषता दिखलाता है। फल यह होता है कि उसका नाम भविष्य सन्तान के स्मृतिपट पर हमेशा के लिए अंकित होजाता है। ऐसे ही पात्रों में हम नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, सुधन्वा, भीष्म तथा अन्य अनेकों पुनःस्मरणीय महानुभावों का नाम ले सकते हैं। अतीत के सर्वाच्छादक, तमोमय पट को भेद कर उनके नाम ग्रह-रूप में हमेशा जगमगाते रहते हैं तथा आप्रलयान्त रहेंगे।

उनकी इस असाधारण महत्ता के कारण का अन्वेषण करने पर सबके विषय में केवल एक द्व्यक्षरात्मक शब्द ही कारण रूप से विद्यमान् है। वह है भक्ति।

मरुस्थल में नन्दन, कानन की तरह, घोर तमोमयी रजनी में उज्ज्वल दीप-शिखा की तरह, अशान्त ऊर्मिमय महासागर में सुरक्षित दीप की तरह, यह भक्ति विघ्न बाधाओं तथा विलास-वासना से ताड़ित, शुष्क मानव-जीवन में आशा तथा आनन्दोल्लास उत्पन्न करती है। अहा! श्री० पण्डितराज जगन्नाथ की यह उक्ति भी ठीक इन्हीं भावों को वर्णन करती है।

मृद्वीकासिता सितासमसिता सक्षीरनिर्पीतपयः।
स्वर्यातेनसुधाःपयापिकृतिधा रम्माधरः खण्डितः॥
सत्यंब्रूहि मदीयजीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता।
कृष्णेत्यक्षरयोरयम्मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः॥

पण्डितराज पूछते हैं कि हे मेरे मन! तूने संसार में आकर सुन्दरी स्त्रियों का अधरामृत पान किया है, तथा स्वर्ग में भी अमृत पिया है। कई दफे रम्भा का भी अधरच्छेदन किया है। परन्तु सच बताना, क्या तुमने "कृष्ण" इन अक्षरों में अनवद्य बहने वाले स्वर्गीय माधुर्य्य को भी कभी चखा है? यह है एक विश्व-ज्वाला-तप्त प्राणी की उक्ति! जिस प्राणी ने संसार में भोग विलास को ही जीवन का चरम लक्ष्य मान कर उसको भक्ति-भोग्य उच्च तथा पवित्र आसन पर अभिषिक्त किया था तथा जो जन्म भर इस में मस्त रहा। पश्चात्ताप के भावों को दर्शाने वाली इससे बढ़कर क्या कोई उक्ति है?

अब प्रश्न यह होता है कि जिस भक्ति का हम इतना गुण-गान करते हैं, वह वास्तव में है क्या चीज? भक्ति वह प्रेम है जो साधक अपने इष्टदेव से मनसा, वाचा, कर्मणा करता है। व्याकरण की दृष्टि से भक्ति 'भज्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से सिद्ध होती है। भज धातु का अर्थ सेवा करना है। इस दृष्टि से हम भक्ति को कई विभागों में बांट सकते हैं। जैसे ईश्वर भक्ति, मातृ पितृ भक्ति, देशभक्ति इत्यादि। इन सब तरह की भक्ति के साधकों को हम भक्त शब्द से पुकार सकते हैं। इस लेख में भक्ति शब्द से हम केवल ईश्वर भक्ति को ही लेते हैं।

यह तो हुवा व्याकरण निष्पन्न भक्ति का लक्षण। अब हमें देखना चाहिये कि इसका लक्षण महर्षियों की दृष्टि में क्या है? महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं कि "आत्मरत्यविरोधेन भक्तिः" अर्थात् आत्म रति के अविरोधी विषय में अनुराग का नाम भक्ति है। जब जगत् का भान जाता रहता है और साधक एक मात्र आत्मचैतन्य में ही सदा स्थिर रह कर परम आनन्द का भोग करता है, उसका नाम आत्म रति है, इसी आत्मरति को प्राप्त कर साधक जब अपने हृदय देव के साथ एक रूप हो जाता है उसी को भक्ति कहते है। देवर्षि नारद भी इसी बात को ही दुहराते हैं। उनके मत में "तदर्पिताऽखिला चारता, तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति भक्तिः।" अर्थात् जब भक्त का ऐसा स्वभाव होजाय कि वह अपने सम्पूर्ण कर्मों को "प्रातरुत्थाय सायाह्नं सायाह्नात्प्रातरन्ततः। यत्करोमि जगन्मातः तदेव तव पूजनम्" की तरह भगवान् में अर्पण किया करे और उनको कभी न भूले और यदि भूल जाय तो उसके चित्त में परम व्याकुलता हो जाया करे इस दशा को भक्ति कहते हैं। भक्ति मार्ग के आचार्यों ने भक्ति सूत्र में लिखा है कि "न तत्रापि माहात्म्यज्ञान विस्मृत्यपवादः। तद्धि हीनञ्जाराणामिव।" अर्थात् ईश्वर महात्म्य ज्ञान से जो ईश्वर में प्रीति होती है उसी को भक्ति कहते हैं। इसके विपरीत जो साधारण प्रीति होती है उसे भक्ति नहीं कहते, जैसे कि जार अर्थात् व्यभिचारियों की प्रीति। योगीराज भगवान् श्रीकृष्ण भी गीता में कहते हैं कि "यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।" अर्थात् हे अर्जुन! जप, तप, दान, यज्ञादि जो कुछ तू कर्म करता है उन सब को मुझे समर्पण करदें। महर्षि प्रवर शाण्डिल्य भी कहते हैं कि "सापरानुरक्तिरीश्वरे।" अर्थात् परमेश्वर के प्रति अनन्य अनुराग करना ही भक्ति कहलाती है। भक्ति शब्द भी अनुरागवाचक है। जिस प्रकार पिता, माता आदि गुरुजनों में अनुराग को श्रद्धा, बन्धु और स्त्री में अनुराग को प्रेम तथा पुत्र और कन्या आदि में अनुराग को स्नेह कहते हैं उसी प्रकार जगत्कर्ता, भवभयहारि, भक्त मनरञ्जन भगवान् में अनुराग को भक्ति कहते हैं।

अब देखना चाहिए कि भक्ति किस तरह की जाती है। जिस तरह पतित पावनी भगवती जाह्नवी सांसारिक जीवों का उद्धार करने के लिए तीन धाराओं में बही है उसी तरह "जगत्प्रसूतिर्जगदेकपावनी" भगवद्भक्ति भी विषय तप्त सांसारिक प्राणियों को नवधा विभक्त होकर अगाध तथा अनिर्वचनीय शान्ति प्रदान करती है। शास्त्रों में नवधा भक्ति का वर्णन इस तरह किया गया है:-

श्रवणङ्कीर्तनम्विष्णोः स्मरणम्पाद सेवनम्।
अर्चनम्वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

अर्थात, भगवद्विषयक कथाओं का श्रवण करना, उनका नामोच्चारण करना, उनका ध्यान करना, उनके चरण-कमलों की पूजा करना, उनको अभिवादन करना, अपने को उनका नौकर समझना, कभी कभी उनको भिन्नता की दृष्टि से देखना तथा अपनी अहम्मन्यता त्याग कर इन पर अपने को समर्पण कर देना यह है भक्तोंकी चिर-परिचित सरणि। "महाजनो येन गतः स पन्थाः" के अनुसार यह सबसे सीधा तथा सुरक्षित रास्ता है।

यद्यपि पाश्चात्य भक्त तथा कवि-गण भगवद्भक्ति का इतना ऊंचा आदर्श-जैसा कि आर्य महर्षियों

ने समझा तथा अनुशीलन किया था, नहीं समझ सके हैं, तथापि उनका ध्येय भक्ति मार्ग भी कुछ कुछ अंशों में उपरोक्त लक्षणों से मिलता है। प्रसिद्ध कवयित्री "एमिलीब्रोन्टे" भगवान् को लक्ष्य कर कहती हैं:-

And give my spirit to adore,
Thee, ever-present phantom thing.
My slave, my comrade and my king.

इसका कहना है कि "हे अविनाशी ! मैं मेरी आत्मा को आपकी पूजा में तीन भाव से लगाती हूं। दास्य, सख्य तथा प्रभुत्व।

यद्यपि हमारा अभिप्राय इन नवों भक्ति-पथों को इनके वर्णन सहित लिखने का था परन्तु लेख बढ़जाने के भय से हम केवल इनके प्रधान प्रधान पथिकों के परिचय सहित उनका संक्षेप वर्णन करते हैं। समय मिला तो पाठकों की सेवा में फिर इसी विषय को लेकर उपस्थित होंगे।

सबसे पहिले श्रवण-भक्त को लीजिए। जिस भक्त ने भगवद्विषयक कथाओं को सुनकर ही मोक्ष प्राप्त किया हो वह इस कोटि का भक्त है। ऐसे भक्तों में राजा परीक्षित अग्रगण्य हैं। लगातार ७ दिन तक आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र के चरितामृत को पानकर परिक्षित अमर होगये हैं।

कीर्तन-भक्त श्री महाप्रभु चैतन्यदेव "सर्वेषां धुरिस्थितः" हैं। श्रीकृष्णचन्द्र के नामोच्चारण में वे ऐसे लीन हो जाते थे कि उनको संसार तथा अपनी देह का भान ही नहीं रहता था।

भगवत्स्मरण करके मोक्ष प्राप्त भक्त राजर्षि भीष्म-पितामह हैं। कुरुक्षेत्र के भीषण युद्ध में आहत होकर बाण शय्या पर लेटे लेटे ही सर्वदुःखहारी भगवान् का हृदय में स्मरण करते रहते हैं। देवी द्रौपदी भी ऐसे ही भक्तों में कही जा सकती हैं। ऐसे भक्त महात्मा तुलसीदास जी के शब्दों में-

"नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज-पद पंजिका..... ॥

के आचरण करने वाले हैं। सतत भगवच्चिन्तन ही उनका काम है।

पाद-सेवन-रत भक्तों में जगन्माता लक्ष्मी देवी का आसन सबसे ऊंचा है। क्षीर-सागर में शेषशायी परमेश्वर निद्रारत हैं। पास ही "पतिव्रतानां धुरिकीर्तनीया" जगज्जननी बैठी उनके पैर दाब रही हैं। अहा ! क्या ही अनिर्वचनी यशानन्द है ! जिस भक्त को पाद सेवन जैसा दुर्लभ सुख मिले वह धन्य है।

दास्यत्व दृष्टि से परम पिता की भक्ति करने वाले पक्षिराज गरुड़ की तो बात ही और है। हमेशा प्रभु की हाजिरी में रहना उनको इधर उधर लिए फिरना, यही काम करके पक्षिराज ने अपना नाम अमर कर लिया है।

महावीर अर्जुन मित्र-भक्ति के लिए प्रसिद्ध ही हैं। वे गीतामें कहते हैं कि"सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति।" मैं तुम्हें मित्र मान कर हे कृष्ण, हे यादव ! तथा हे मित्र ! इत्यादि नामों से पुकारता था।

आत्म निवेदन करने वाले भक्तों में सर्व प्रथम स्थान भक्त लक्ष्मण को दिया जायगा। उनकी दृष्टि राममय थी। अपनी स्वतन्त्र सत्ता वे मानते ही नहीं थे।

इस तरह इन महापुरुषों ने जगदीश्वर की विविध विधि से सेवा करके अपना नाम सदा के लिए उज्ज्वल कर लिया है। इनके इस सर्वव्यापी प्रभाव

को देख कर स्वार्थान्ध प्राणियों की आंखें भी उस परम पुरुष के चरणों पर लग जाती हैं। उनके मन में भक्ति-रस उमड़ आता है। हम इस लेख को यहीं पर समाप्त करते हुए परब्रह्म परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि:-

"कृष्ण त्वदीय पदपंकज पञ्जरान्ते ।
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः ॥
प्राणप्रयाण समये कफवातपित्तैः ।
कण्ठे गते सति पुनः स्मरणकुतस्ते ॥"

ब्रह्म संबंध

[ले० श्री पीताम्बर राव भट्टाचार्य]

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि अखिल ब्रह्मांड नायक की अगणित एवं विभिन्न सृष्टि में "मनुष्य" एक यथार्थ विवेक युक्त प्राणी है। उसे सत्य, असत्य, नित्य, अनित्य, वस्तुओं का यथार्थ विवेक है। यदि उसमें यह विशेष गुण न होता तो उसमें और अन्य पशुओं में भेद करना कठिन हो जाता। संसार के अन्य प्राणियों की अपेक्षा इस मनुष्य को परब्रह्म परमात्मा ने अधिक शिष्ट बनाया है। इसी शिष्टाचार का यथावत् पालन करने के निमित्त उसे प्रतिक्षण अपनी बुद्धि बल द्वारा जीवन के प्रधान लक्ष्य की गवेषणा करते हुए विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। जिस वस्तुको अपना प्रधानोद्देश्य माना है तदनुसार ही कर्म करते हुए अपने जीवन समय को व्यतीत करना बुद्धिमत्ता है।

ऊपर लिखी हुई बातों को जहां तक इस मनुष्य से सम्बन्ध है उन सब पर विचार करने से यही धारणा होती है कि मनुष्य मात्र की सर्वत्र, सर्वकालीन, "सत्यानन्दो मे भूयात्" अर्थात् मुझे सदैव ही आनन्द मिले यही अकट इच्छा रहती है जिसकी पूर्ति के अर्थ यथासंभव सतत प्रयत्न भी होते रहते हैं। इस सम्बन्ध में यदि कुछ शंका है तो बस इतनी ही कि वह 'सत्यानन्द' क्या सांसारिक पदार्थों के भोग में, इन्द्रियों के सौख्य में, पुत्र स्त्री बान्धवादि के स्नेहमय बन्धनों में, हीरा पन्ना जवाहिरादि के स्वामित्व में, निखिल शास्त्र विशारदत्व में, अथवा भगवती भागीरथी के तट पर तपश्चरण करने इत्यादि में नहीं है? उत्तर यही मिलता है कि ये सम्पूर्ण वैषयिक सुख देने वाले हैं। अतएव क्षणिक हैं। अस्थिर सुख का भोग ही क्या? जो नित्य सुख हो वही श्रेयस्कर है। तब सत्य आनन्द क्या और कहां है? इसके लिये श्रुति का निम्नलिखित वाक्य है "सत्यानन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्" सत्य आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही को जानना चाहिये। जब सत्य आनंद स्वरूप ब्रह्म है और उसी ब्रह्म का अंश मनुष्य है तब तो यह बात वेद सिद्ध है कि मनुष्य अवश्य ही उस सत्य आनन्द का परम भाजन है और सत्य निज स्वरूप की उपलब्धि के हेतु उसका प्रयत्न करते रहना भी यथार्थ है।

अब यहां प्रश्न उठता है कि उस सत्य आनन्द स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति मनुष्य को किस प्रकार हो? क्योंकि इस समय उससे (धनके अभाव से) न कोई बड़े दान पुण्य, यज्ञादिक हो सक्ते हैं और न उसमें

तपश्चर्या की कठिन साधनाओं का पालन करने की शक्ति तथा आयु ही है जिससे उसे कुछ सहायता मिल सकती। तब इस विकट समस्या को सुलझाने को परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र द्वारा अर्जुन के प्रति श्रीमद्भगवद्गीता में कथित यह श्लोक ही पर्याप्त है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥

हे अर्जुन! समस्त धर्मादिकों को-तज्जन्य-फलादिको त्याग कर केवल मेरी ही शरण में प्राप्त हो। मैं तुझे समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा। तू कुछ भी शोच मत कर इसी आज्ञानुसार हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि मनुष्य को भगवच्छरण के अतिरिक्त, इस संसार के भयप्रद वैषयिक प्रलोभनों से रक्षा करने वाला, एवं अखण्ड, विशुद्ध, आनन्द देने वाला अन्य कोई भी साधन नहीं है। अतएव मनुष्य के हितार्थ सरल से सरल उपाय यही है कि वह भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में प्राप्त हो। इस भक्तियोग से उसके समस्त सांसारिक बन्धन छूट जायंगे और सुख शान्ति प्राप्ति होगी। इस शरण प्राप्ति के अनेकों मार्ग हैं उनमेंसे यहां पर केवल श्रीमद्वल्लभार्चार्य द्वारा प्रतिपादित सरलातिसरल सर्वश्रेष्ठ विश्वकल्याण कारी परम पावन मार्ग का संक्षेप रूप से दिग्दर्शन कराया जाता है॥

ऊपर कहा जा चुका है कि "ब्रह्म का अंश जीव है"। जब ब्रह्म और जीव का नित्य सम्बन्ध वर्त्तमान है तब फिर सम्बन्ध स्थापित करने का यह प्रयास कैसा? उसका यह समाधान है कि ब्रह्म और जीव का जो अनादि काल से सम्बन्ध है वह सत्य है। परन्तु उस समय से इस काल तक सहस्रों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं अतः इतने समय में इस जीव में जो उसके स्वामी से विछोह होजाने के कारण जो शिथिलता आई है उसीके दूर करने को इस पुनर्सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता पड़ी। क्योंकि इस शिथिलता के कारण सहज मुक्त जीव आनन्द मूर्त्ति ब्रह्म को विस्मरण कर नाशवान क्षणिक सुखों के कठिन जाल में फंस गया है। अतएव उस जाल से मुक्त करने को और अपने अधिपति के पुनः स्मरण कराने के हेतु (जिससे उसे आध्यात्मिक नित्य सुख की वृद्धि हो) ही इस सम्बन्ध को दृढ़ीभूत करने की आवश्यकता हुई। इस सम्बन्ध की अनेकानेक विशेषताओं में से एक विशेषता यह है कि इस 'ब्रह्म सम्बन्ध' द्वारा यह जीव जिस समय प्रभु चरणों में आत्मनिवेदन कर देता है उस समय उसे प्रत्येक स्थान, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक वस्तु में वही सच्चिदानन्द श्री कृष्ण ही दिखलाई देते हैं। (यह दशा विशेषकर प्रभु के अनन्य भक्त को ही होती है) प्रभु का साक्षात्कार ही इस सम्बन्ध की चरम सीमा है। जब स्वामी से ही परिचय होगया तब तत्सम्बन्धी अनेक लीलाएँ इत्यादि वस्तुएं स्वभावतः ही प्राप्त होंगी।

इस 'ब्रह्मसम्बन्ध' का 'श्रीमद्वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त'-नामक पुस्तक में इस प्रकार अर्थ किया गया है:-

'ब्रह्म सम्बन्ध'-शब्द में 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण है और सम्बन्ध का अर्थ है, अंशांशी भाव व स्वस्वामि भाव सम्बन्ध! तब पूर्ण अर्थ यह हुआ कि हे स्वामिन्! मैं आप ही का दास हूं! मेरा धन, तन, मन, धान्य, पुत्र, कलत्रादि सर्वस्व आपका ही है। मैं अत्यन्त दीन और निःसाधन

हूं। मेरे पास मोक्ष के लिये या आपको प्रसन्न करने के लिये कोई भी साधन नहीं है। अतएव हे दयालो! मुझे आप अपनी सेवा में अङ्गीकार कर लीजिये। मैं आपही का हूं।

अब इस 'ब्रह्म सम्बन्ध' की दीक्षा जो श्रुति-स्मृति द्वारा सिद्ध एवं विश्वमान्य है किसके द्वारा ग्रहण करनी चाहिए। तब गीता का यह वाक्य ही उचित जंचता है कि 'आचार्यं मां विजानीयात्'। इस विश्व में वेद सर्वमान्य है। उन्हीं वेदों में आचार्य को परमेश्वर के छः गुणों में से एक गुण "ज्ञान" का अवतार कहा है। आचार्य शब्द बहुव्यापक है। अतः संक्षेप में ही आप्त वाक्य द्वारा इसका बोध कराया जाता है।

'आचिनोति हि शास्त्राणि-स्वाचारे स्थापयत्यपि।
आचारयति यो लोके तमाचार्यं प्रचक्षते॥

अर्थात् जो वेद शास्त्रादिकों का आचयन करे, उन्हें वैदिक सिद्धान्तों में समन्वित करे और जो वेदोक्त आचारों का अपने आचरण में स्थापन करे, और संसार में उपदेश देकर लोगों से उसका आचरण करावे, वह 'आचार्य' कहा जाता है।

अतः इस ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा को आचार्य द्वारा ही सम्पादित कराना चाहिये। इस दीक्षा को लेने का सबको समान रूप से अधिकार है। जिस प्रकार भगवान् भुवन भास्कर के दिव्य तेज का उपभोग समस्त प्राणीमात्र कर सकते हैं उसी प्रकार विश्वपति श्रीकृष्णचन्द्र की भक्ति में भी जाति भेद व वर्ण भेद कुछ भी नहीं है। इसका अकाट्य प्रमाण स्वरूप भी गीता का यह वचन है।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्ते यान्ति परां गतिं॥

अर्थात् हे अर्जुन! मेरी शरण में आने वाले, संसार में एक मात्र मेरा ही आश्रय लेकर जीवन व्यतीत करने वाले, स्त्री, शूद्र, वैश्यादिक चाहे जितने पापी भी क्यों न हों सर्वश्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं।

अतः दीक्षित होने पर "श्री कृष्णः शरणं मम" इस महामंत्रका अहर्निश ध्यान करे। निरन्तर अभ्यास से सच्चिदानन्द परब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इस साक्षात्कार से सकल कामनायें पूर्ण होती हैं। मनुष्य को सत्य, नित्य, आनन्द की प्राप्ति होती है।

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।
स्यादिदं भगवान्साक्षात् पूर्णपुरुषेश्वरः॥

चितवन।

[लेo श्री रामसेवकसिंह "श्याम"]

सुन री सखी आज! श्याम क्यों बोलत नाहिं।
दस्यो सर्प कैधों, जादू लगो टोना है॥
धायी कै कहहु, ऐ री! महरि कृपानु की।
बोलत सखी री नाहिं, मुख मलीन सखेना है॥
बिह्वल ह्वै कहैं ऐ री! सुनि कै दिवानी सखि।
जाई के बुलाओ श्याम! प्रेम बीज बोना है॥
सत्वर आयें मोहन, जगायो बंशी शब्द श्याम।
धन्य श्रीराधि के, जेहि सांवरा सलोना है॥

सुखमय जीवन

दुःखवाद ।

गत बारहवें अंक से आगे ।

(ले० पं० सनत्कुमार जी निर्मल)

एक वियोगी भावुक विलाप करता हुआ कहता है:-

नपुंसकमिति ज्ञात्वा त्वां प्रति प्रहितं मनः
तत्तु तत्रैव रमते हताः पाणिनिनाऽनयम् ।

तो क्या इस स्वर्ग को ईर्ष्याग्नि से भभकता हुआ देख कर इस वृत्त को हम इस प्रकार नहीं पढ़ सकते ?

स्वर्गन्नाकन्तु विज्ञात्वा तं प्रति प्रहितं मनः ।
तत्तु तत्रापि व्यथते हताः पाणिनिनाऽनयम् ॥

हमने तो पाणिनि के वचनों का प्रत्यय कर स्वर्ग को नाक अर्थात् दुःख रहित समझ अपने मन को वहां भेजा परन्तु वह तो वहां भी व्यथित होता है। हां ! पाणिनि ने तो हमें यों ही धोके में मारडाला ।

खैर छोड़िये इस स्वर्गीय सुखाशा को अथवा मुक्ति के अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति का प्रयत्न कीजिये । मौक्तिक सुखतो गूंग के गुड़ के समान अकथनीय है । ससार मे ऐसा कोई सुख ही नहीं जिसकी उपमा मौक्तिक सुख से दी जावे परन्तु ऐसे भी विलक्षण प्राणी इस वसुन्धरा को विमण्डित किये हुए हैं जो इस आनंद मे भी दुःख का अनुभव करते हैं । जिस समय महावीरार्जुन इन्द्रकील पर्वत पर अमोघास्त्रों की प्राप्ति के लिये मुनिमोहक तपानुष्ठान मे लगे हुये थे तब महेन्द्र ने आकर कहा "तपोधन ! रणोत्साह को छोड़िये देखिये यह समीचीन तप नष्ट हुआ चाहता है आप इसे बचाइये । अरे ! यह जीवन मरण के बन्धन छुड़ाने वाला है क्या इस की इस प्रकार विडम्बना युक्त है ?' इस का उत्तर जो गाण्डीव पाणिने दिया वह महा कवि भारवी के शब्दों में सुन लीजिये ।

वंश लक्ष्मीमनुद्धृत्य समुच्छेदेन विद्विषाम् ।
निर्वाणमपि मन्येऽहमन्तरायं जयश्रियः ॥

तात कदाचित् आप मुझे जानते नहीं यही कारण है जो आप मुझे इस प्रकार उपदेश प्रदान कर रहे हैं । भगवन् मैं पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिर का छोटा भाई अर्जुन हूं । आप को मालूम होगा हमारी राज्यश्री धार्तराष्ट्र दुर्योधन के द्वारा अपहृत हो चुकी है अतः जब तक हम अपनी वंशागत राज्यश्रीका उद्धार न करलेंगे, उसे प्राप्त न कर लेंगे तब तक हमें भूम्यानन्द और स्वर्गीय भोग विष के समान प्रतीत होते हैं यहां तक कि निर्वाण भी यदि इस अन्तर में हमें प्राप्त होतो वह भी हम लोगों को अन्तराय विघ्न ही प्रतीत होगा, हम उसको त्याग देंगे अरियों द्वारा किये गए अपकार की भभकती हुई अग्नि इन मोक्षानन्द के अप्रतिम वारि से शान्त नहीं हुई । ऐसे ही विश्व प्रेमी गौत्तम बुद्ध ने त्रिविध तापतप्त प्राणियों से सहानुभूति प्रकट करते हुये कहा:-

जब तक जग के सब जीवों को नहीं मुक्त हुआ मैं पेखूंगा ।
तब तक अपि मुक्ति कभी भी तो नहीं ओर तेरे मैं देखूंगा ॥

अभिप्राय यह है कि क्रोध और मोह अथवा प्रेम आवेश में मोक्षानन्द भी हेय हो जाता है । अथवा यों कहिये ऐसे प्राणियों को उसमें कुछ सुख ही नहीं प्रतीत होता । यदि वास्तव में मोक्ष में सुख होता तो प्रत्येक प्राणी उसकी प्राप्ति का इच्छुक एवं उत्कण्ठित होता उपेक्षक नहीं । सुख को प्रत्येक प्राणी चाहता

है पर मोक्ष को प्रत्येक नहीं। अतएव निश्चित होता है कि मोक्ष में सर्वथा सुख नहीं। हम निश्चय करने का वाले कौन ? भगवान् ने स्वयं अपने श्री मुख से कहा है कि:-

नपामेऽद्यं न महेन्द्र धिष्ण्यं न सार्वभौमं नर साधिपत्यम्
न योग सिद्धिर्न पुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छसि मद्दनान्यत्।

मेरे भक्त मेरे सिवा किसी पदार्थ की अभिलाषा नहीं करते यहां तक कि उन्हें मोक्ष कीभी परवा नहीं, मुक्ति उन्हें सुख दे ही नहीं सकती, तो क्या भगवान् के चरणों में सुख है ? नहीं नहीं उनके भक्त तो सदादुःख की उपासना किया करते हैं, कबीर जी ने कहा है:-

सुख के सिर पर सिल पड़े जो तज नाम दुरावा।
बलिहारी वा दुःख की जिहि दिन नाम रटावा॥

भगवान् का एक स्वरूप किसी भक्त को लालायित करता है तो वहीं किसी को व्याकुल। मुरलीधर को देख कर भक्त वर तुलसी के मुख से निकला:-

कर मुरली कटि काछनी भल बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे धनुषबाण लो हाथ॥

पद्मनाभ के पादपद्मों में पहुंच कर भी मुरलीधर और धनुर्धर का द्वैत भाव गोस्वामी जी को चिन्तत करने लगा तभी तो कहते हैं कि हा ! दुःख देव तुम्हारी सर्व व्यापकता सर्वमान्य है तुम किसी प्राणि का कहीं भी पिण्ड नहीं छोड़ते। लोग कहते हैं कि भगवान् की शरण में जाकर प्राणि सुखी होगा, उसका यह नमूना है। धन्य है उस रमणी वियोग के वियोगी मजनू को उसने खरा जवाब देदिया। बात यों हुई कि उसके पिता ने जब उसे विलाप करते देखा तब उस से कहा पुत्र ! लैली लैली क्यों करता है अल्लाहर कर कर। परन्तु पिता के इस सदुपदेश की उपेक्षा करते हुए कैसने कहा:-

खुदा के सामने हर्गिज न मजनू सर झुकायेगा।
खुदा को चाह गर होगी तो खुद बन लैली आयेगा॥

कैस ! तुम्हारा कैसा कलेजा है ? जो सच्चिदानन्द के चारु चरणों पर चार आंसू न गिरा सका। और लैली के लिये ? लैली के लिये तो कहता है कि,:

मुत्तसिल रोते ही रहें तो मिटे आतिश दिल की।
एक दो आंसू तो और आग लगा जाते हैं॥

इस प्रकार की विचित्रता देख कर ही तो भवभूति की यह कृति स्मरण होती है

वज्रादपि कठोराणि मृदूनी कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को विज्ञातु महर्ति॥

भला उन लोकोत्तर नरपुंगवों के चित्तका कोई क्या अन्दाज़ा लगा सकता है ? उन की कोई उपमा ही नहीं वे वज्र से भी कठोर और कभी कुसुम से भी कोमल होजाते हैं। जगत् के जंजाल से दुःखी होकर एक कवि कहता है:-

दुनियां में कुछ सिवाये रञ्जो महन न देखा।
कुञ्जए कफ़समें हमने रंगे चमन न देखा॥

इस धरातल पर नहीं२ अखिल विश्व में सुख का लवलेश नहीं। हमने सर्वसुन्धरा के प्रत्येक वस्तु के वास्तविक मर्म को टटोल लिया। इस मृत्यु लोक के हर एक मर्त्य की खोज करली। पर दुःख देव ! तुम्हारी इस सर्व व्यापकता के आगे शिर झुकाना ही पड़ा, स्वर्ग के दिव्य भोगों को भोगा मुक्ति के परमानन्द की अन्वेषणा की परन्तु तुम से बिल्कुल न हो पाये:-

फिर कर इधर उधर भी न अपना गया कलङ्क।
कफ़ज़ए कुल्क की तरह यों ही रहा कुलङ्क॥

जैसे कलङ्क शब्द इधर से पढ़िये वा उधर से कलङ्क ही रहता है ऐसे ही यह कलङ्क (दुःख) भी

दुःख ही रहता है चाहे विश्व में फिर आइये। तभी तो यह कहना पड़ता है:-

सुखिया सुखिया सब कहै, सुखिया खला न कोय।
पढ़ा काल के गाल में, कहिं विधि सुखिया होय॥

अपूर्ण

त्वंपद विवेक

[ले० श्री महात्मा राम]

छांदोग्योपनिषत् के छटे अध्याय में 'तत्त्वमसि' महावाक्य के अन्तर्गत त्वं पद के वाच्यार्थ में जो अविद्या विशिष्ट चैतन्य है उसको जीव कहते हैं। इस जीवात्मा की तीन अवस्था, तीन शरीर, तथा षट् ऊर्मि, षट् विकार और पांच कोश ये उपाधि हैं। इन उपाधियों के सम्बन्ध से यह जीवात्मा अपने स्वरूप को भूल कर अनेक योनियों में अधः ऊर्ध्व घटी यंत्र चक्र के समान भ्रमता रहता है। कभी छुटकारा नहीं पाता। कदाचित् किसी सत्संगति के प्रभाव से तथा पूर्व जन्मों के पुण्योदय से संसार के घोर तापों से संतप्त होकर जन्म मरण के दुःखों से छूटने के लिये, जिसको विश्वेश्वर भगवान के चरणों में अनुराग उत्पन्न हुआ है वह मुमुक्षु किसी योग्य सत्गुरु की शरण को प्राप्त होकर अपने कल्याण के लिये अनेक प्रकार गुरु सेवा शुश्रूषा करता हुआ उस परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान को श्रवण करने की जिज्ञासा करे जो अपने कल्याण का साधन है तथा उन्हीं शास्त्रों का अभ्यास करे जो गुरूपदिष्ट अर्थ के अनुकूल हों। जिन शास्त्रों में ज्ञान के साधन विवेक वैराग्यादि कथन किये हैं उनका बारंबार विचार करना चाहिये। आत्मज्ञान के मुख्य चार साधन हैं विवेक, वैराग्य शमादि षट् संपत्ति मुमुक्षुत्व'। इन चारों साधनों में प्रथम विवेक का विचार करते हैं। जिस विचार द्वारा सत् असत् का निर्णय किया जाय उसे विवेक कहते हैं। सत् वस्तु एक आत्मा है असत् वस्तु अनात्मा है। आत्मा अनात्मा का जो परस्पर सम्बन्ध है वह विवेक द्वारा निवृत्त होगा और त्वं पदार्थ रूप जीवात्मा के विवेचन करने से ही इस आत्मा अनात्मा का विवेक सिद्ध होगा। इसलिये हम को जीवात्मा का ही विचार करना उचित है।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्था हैं। (१) जाग्रत अवस्था में पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्म इन्द्रिय पांच प्राण, मन, बुद्धि, इन सतरह तत्वों द्वारा जीवात्मा व्यवहार करता है उस का नेत्र स्थान है, वैखरी वाणी है, स्थूल भोग का भोक्ता है। क्रिया शक्ति है, रजो गुण है, जाग्रत अवस्था के अभिमान से जीव का "विश्व" नाम है।

(२) स्वप्न अवस्था में जाग्रत् अवस्था के देखे सुने तथा भोगे हुए पदार्थों के संस्कारों से उन उन पदार्थों की आभास मात्र प्रतीति जिसमें होती है उस का कंठ स्थान है, मध्यमा वाणी है, सूक्ष्म (वासना मात्र) भोग है, ज्ञान शक्ति है, सत्व गुण है, और स्वप्नावस्था के अभिमान से जीव का 'तैजस" नाम है।

(३) सुषुप्ति अवस्था में अत्यन्त गाढ़निद्रा में सोये हुए पुरुष की बुद्धि अज्ञान में विलीन हो जाती है। उसका हृदय स्थान है, पश्यन्ति वाणी

है, आनन्द का भोक्ता है, द्रव्य शक्ति है, तमोगुण है, और सुषुप्ति अवस्था के अभिमान से जीव का 'प्राज्ञ' नाम है, ये तीनों अवस्था जीवात्मा की उपाधि रूप हैं। आत्मा इन का साक्षी है और इन से न्यारा है।

तीन शरीर।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण यह तीन शरीर हैं।

(१) आकाशादि पंचीकृत पंच महाभूतों के पच्चीस तत्वों का स्थूल शरीर है। पंचीकरण आकाशादि पांचों भूतों के ईश्वर की प्रेरक शक्ति से एक एक के दो दो भाग बने। उन दो दो भागों में से एक एक अलग होगया दूसरे एक एक भाग के चार चार भाग बने उन चारों भागों में से एक चौथाई भाग अपने अर्धभाग को छोड़कर दूसरे भागों में मिला। जैसे आकाश के दो भाग हुए एक भाग अलग छोड़ कर दूसरे अर्ध भाग के चार भाग बने उन चारों भागों को अपने अर्ध भाग में न मिला कर एक वायु में, एक अग्नि में, एक पृथवी में मिलाया वायु के दो भाग हुए। अर्ध भाग छोड़ कर आधे भाग के फिर चार भाग हुए। उन चारों भागों को एक आकाश में अपना छोड़ कर दूसरा अग्नि में तीसरा जल में चौथा पृथवी में मिलाया इसी प्रकार पांचों भूतों के चौथाई चौथाई भाग दूसरों में मिल कर पंचीकरण हुआ। तदनन्तर समस्त ब्रह्माण्ड की रचना हुई तथा यह पच्चीस तत्वों का स्थूल शरीर रचा गया।

पच्चीस तत्त्व।

आकाश के पांच तत्व-काम, क्रोध, शोक, मोह, भय। वायु के पांच तत्व-चलन, बलन, धावन, प्रसारण, आकुंचन। तेज के पांच तत्व क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, कान्ति। जल के पांच तत्व-शुक्र, शोणित, लार, मूत्र, स्वेद। पृथ्वी के पांचतत्व-अस्थि, मांस, नाड़ी, त्वचा, रोम, इति। इन पांच पांच तत्वों में एक एक तत्व अपना है और दूसरे चार भूतों के मिले हैं। जैसे आकाश का मुख्य भाग शोक है। क्योंकि आकाश के समान शोक में भी शून्य अवस्था होजाती हैं और काम आकाश में वायु का भागमिला है तथा क्रोध आकाश में अग्नि का भाग मिला है। मोह आकाश में जल का भाग मिला है। भय आकाश में पृथवी का भाग मिला है। वायु के तत्वों में, प्रसारण (फैलाव) वायु में आकाश का भाग मिला है तथा धावन, वायु का मुख्य अपना भाग है। बलन, तप वायु में तेज का भाग मिला है। चलन, वायु में जलका भाग मिला है। आकुञ्चन, वायु में पृथवी का भाग मिला है। अग्नि के तत्वों में निद्रा, आकाश का भाग मिला है। तृषा तेज में वायु का भाग मिला हैं। क्षुधा तेज का अपना मुख्य भाग है। कान्ति तेज में जल का भागमिला है। आलस्य तेज में पृथ्वी का भाग मिला है। जल के तत्वों में, लार जल में आकाश का भाग है। स्वेद (पसीना) जल में वायु का भाग मिला है, मूत्र जल में तेज का भाग मिला है। वीर्य जल का मुख्य भाग है और रुधिर जल में पृथ्वी का भाग मिला है। पृथ्वी के तत्वों में रोम आकाश का भाग है, त्वचा पृथ्वी में वायु का भाग मिला है, नाड़ी पृथ्वी में अग्नि का भाग मिला है, मांस पृथ्वी में जल का भाग मिला है,। अस्थि पृथ्वी में अपना मुख्य भाग है। इस प्रकार पांच भूतों के पच्चास तत्वों का संघातरूप यह स्थूल शरीर है। अविचार से इस स्थूल शरीर में आत्म दृष्टि कर के 'स्थूलोऽहम्' 'कृशोऽहम्' काणोऽहम्' इत्यादि स्थूल शरीर के धर्मों को अपने मान कर निरंतर अभिमान करता है। तथा

नाम, जाति, वर्ण आश्रम आदि धर्म अपने में जानता है, यह सब अज्ञान का प्रभाव है। वास्तवमें ये धर्म स्थूलशरीर के हैं आत्मा के नहीं हैं। तथा इन पच्चीस तत्व रूप काम क्रोध लोभमोह शोकादि के भाव को तथा अभाव को जानने वाला इन का प्रकाशक, इन से न्यारा, सदा एक रस रहने वाला आत्मा, उत्पत्ति नाश रहित इस स्थूल शरीर से न्यारा है। यह स्थूल शरीर मन्दिर है, आत्मा इसमें रहने वाला देव है। पंच महाभूतों का कार्य पच्चीस तत्व रूप ही है। जो जिसका कार्य होता है, वह कारण रूप ही है। अपने कारण से पृथक् होकर कार्य की स्थिति नहीं रह सकती। पंच भूतोंके कार्य पच्चीस तत्वोंको अपने अपने कारण में लय करके अलग होजाना चाहिये। जैसे किसी स्थान में किसी पुरुष को भूतावेश होजावे तब किसी योग्य स्याने को बुला कर धूप दीप देकर मंत्र पढ़ के पांच सात वस्तु भेट देकर विदा करे। तैसे इस जीवात्मा को आकाशादि पंच महाभूत लगे हुऐ हैं ये इसे कभी नहीं छोड़ते इन से बचने के लिये किसी योग्य सद्गुरु की शरण में जाकर जप, ध्यान, पूजा गुरू सेवा आदि धूप दीप देकर तथा वेद के महावाक्य रूप मंत्रपढ़ के एक एक भूत को पांच २ तत्व रूप भेट देकर सदा के लिये निवृत्त होजाना चाहिये।

गोपदेवी लीला।

[ले० भक्त रत्न श्री मथुराप्रसाद जी]

संसार सार सर्वस्वं श्यामलं महदुज्वलम्।
एतज्ज्योतिरहं वेद्यं चिंतयामि सनातनम्॥
तस्माज्ज्योतिरभूद्देवी राधामाधव रूपकम्।
तस्मादिदं महादेवि गोपालेनैव भाषितम्॥

श्री महादेव जी कहते हैं कि हे पार्वती! मैं वा ज्योति को ध्यान करूं हूं जो समस्त संसार को सार है वह श्याम होने पर भी बहुत उज्वल अति प्रकाशवान् और सनातन है। वही एक ज्योति के दो भाग हैं बायें राधा दक्षिण माधव।

स चरि रंसुराद्मानं द्विधाचक्रे दम्पति रूपेण।

पूर्ण ब्रह्म को रमण की इच्छा भई तो अपनी आत्मा को पुरुष और स्त्री दो रूप में रच्या॥

एकंज्योतिर्द्विधाभूतं उपास्यते श्यामल गौरभेदेन स्वेच्छाभूतं महोदिव्यं।

एकज्योति की दो भांति से उपासना करी जाय है श्यामल और गौर भेदसे॥

श्रीजी एतो वृत्तान्त प्रेम को कहके चुप रहती हैं और सखियां गान करती हैं।

प्रेम ही सार है संसार में कुछ सार नहीं,
जीना बेकार है महबूबसे गर प्यार नहीं।
जोग जप तप भी करो ज्ञानी बनो मुक्ति भी हो,
प्रेम बिन होता है दिलदार का दीदार नहीं।
गर ज़रा सा भी हरी प्रेमका दिल में हो सरूर,
लुत्फ़े शाही की वहां कुछ भी तो मिक़दार नहीं।
दिल में पैदा हो तड़प दर्द विरह की गर आग,
कब है मुमकिन कि करै प्यार वह दिलदार नहीं।
प्रेमियों पै है वह कुरबान दयालू मथुरेश,
क्या किया जी के किया ऐसे को गर यार नहीं।

यह सुनकर गोपदेवी बोली-धन्य है धन्य है, हे राधे! ऐसो प्रेम तो केवल तुम को ही प्राप्त है और काहू को सामर्थ्य नाय है जो ऐसो प्रेम पदार्थ पाय सकै। तुम्हारो वाक्य वृहा जी को हूलप्रभु है, सरस्वती

और वेदन को हू ऐसी सामर्थ्य नांय है। परंतु अब जो तुम श्री कृष्ण को प्रेम द्वारा बाहि समय याही ठौर बुलाय लेउ तब मोकू निश्चय हो जायगी और फिर कोई संदेह न रहैगो:-

श्रीजी शिर झुकाय के अंगीकार करती हैं और तुरन्त ही खड़ी होकर नंदनन्दन को दंडवत् करती हैं और आसन पर बैठ जाती हैं और ध्यान करने लगती हैं। नेत्रों को बन्द करलेती हैं, प्रेमवश आंसुओं का बेरोक धारा नेत्रों से बहनेलगता है और पसीना आजाता है और ध्यान में ऐसी लवलीन होजाती हैं कि तन की किंचिन्मात्र भी सुध नहीं रहती जब यह दशा श्रीजी की होजाता है तो श्रीमहाराज से (जो गोप देवी बनेहुये हैं) नहीं रहा जाता है और अपने शरीर में श्रीजी को लीन देख कर शिर पर से वस्त्र हटा लेते हैं और गोपस्त्री का भेष हटाकर जैसा रूप अपना है प्रगट करलेते हैं। और हे श्रीजी हे रम्भे। हे चन्द्रवदने! हे व्रजेश्वरी! हे प्रिये! हे राधे! कहकर पुकारने लगते हैं और बड़े यत्नसे सचेत कराते हैं और कहते हैं हे प्रिय! नेत्रखोलो जैसे तुमने मोकूं याद कियो तुम्हारे प्रेमवश गौ बछरन को छाड के यमुना जी के तट तें तुरत दौरो आयो हूं। तुम बड़े सरल स्वभाव की हो, काऊ ऐसी वैसी की बातन में मति आजाओ करो जैसे ही मैं यहां आयो एक सुन्दरी श्याम बरन तुम्हारे समीप ठाड़ी देखी जो मोकूं देख कर तुरन्त ही चलीगई न जाने वह कहां गई। बिना ठौर जाने कबहू काऊ को विश्वास न करनो चाहिये।

श्रीजी श्रीकृष्ण, श्यामसुन्दर, मनमोहन प्यारे को साक्षात् सन्मुख पाकर उनके चरण परसती हैं फिर परम आनंद और बड़े प्रेम से दोनों खड़े होकर मिलते हैं। चतुर्दिक आनन्द ही आनन्द होने लगता है। 'जय हो' "जय हो"। ऐसे श्री युगुल सरकार लाड़िली लाल के चरित्र अनेक हैं। जो उनके भक्तन के जीवन धन और प्राणाधार हैं। और उनको प्रफुल्लित और कृतार्थ करते हैं। और परम आनन्द दायक हैं। लीला समाप्त हुई, और सहेलियां मिलकर आनंद मंगल के पद गाती हैं।

जगत जननी का जलवा राधिका तनमें मुबारिक हो,
सनातन प्रेम का सम्बन्ध बिंदुवन में मुबारिक हो।
कही अल्हादनी शक्ति जो वेदों ने उसी छवि को,
प्रगट होना मनोहर बालिका तन में मुबारिक हो।
पता वेदों ने जिसका एक ज्योति रूप बतलाया,
वो राधामाधो बनकर आये दर्शन में मुबारिक हो।
दिये की लौ में ज्यों बादल नज़र आता नहीं त्यों ही,
छिपे हैं कृष्ण गोरी राधिका तन में मुबारिक हो।
छिपी मेघों में ज्यों बिजली है त्यों घनश्याम में राधा,
परस्पर प्रीति ज्यों कर आये वरणन में मुबारिक हो।
निधी शृंगार रस की है विधी हरि के दरश की है,
लगन श्री राधिका मथुरेश दर्शन में मुबारिक हो।

पाश्चात्य गोशालाओं के नियम

(१) गौशाला के अध्यक्ष को गोशाला सम्बन्धीय समस्त नवीनता पूर्ण साहित्य को अध्ययन करना चाहिये।

(२) गायें, गोपालक, गोशाला तथा गोशाला की तमाम चीजों की सफाई की ओर अध्यक्ष को तीव्र दृष्टि रखनी चाहिये।

(३) जिन्हें कोई संक्रामक (फैलने वाली) बीमारी होगई हो उन्हें, गायें तथा दूध से अलग रखना चाहिये।

(४) गौशाला में केवल गो जाति को ही रखना चाहिये। गोशाला की दीवारों के नीचे अथवा कड़ियों पर दूसरी चीजें नहीं रखनी चाहिएं।

(५) गो-गृह में रोशनी, हवा और सफाई का काफी बन्दोबस्त होना चाहिये।

(६) भीगे हुए तथा मैले स्थान पर गायों को नहीं सुलाना चाहिये।

(७) तीव्र गंध वाली कोई चीज़ गोशाला में नहीं रखनी चाहिये। गोबर का ढेर रखने का स्थान गोशाला से दूर और छिपाहुवा होना चाहिये तथा गोबर और गोमूत्र गोशाला से जल्दी हटाते रहना चाहिये।

(८) गोशाला की दीवारों पर वर्ष में एक या दो बार चूना कराना चाहिये। गोबर को प्रति दिन मिट्टी से छुपा देना चाहिये।

(९) गायों को दूहने से पहिले उन्हें सूखी अथवा धूल मिली हुई चीजें कभी नहीं खाने को देनी चाहियें। चारे में यदि धूल मिली हुई हो तो उसे धोकर साफ़ कर देना चाहिये।

(१०) गायों को दूहने से पहिले गो-गृह को अच्छी तरह साफ़ कर उसमें हवा का प्रवेश होने देना चाहिये। गर्मी के दिनों में गो गृहों में पानी का छिड़काव करना चाहिये।

(११) गोशाला के जिस स्थान में दूध रक्खा जाता हो उसे सदैव साफ़ रखना चाहिये।

(१२) विज्ञ चिकित्सक द्वारा एक या दोबार गायों की परीक्षा करानी चाहिये।

(१३) यदि किसी गाय के बीमारी होने का सन्देह हो तो उसे तुरन्त ही अलग करदेना चाहिये।

(१४) गायों को दूहने के पहिले या उनको खिलाने से पहिले उन्हें दौड़ाना ठीक नहीं। दूहने के समय तथा खिलाने के समय उन्हें धीरगति से हटाकर दूहने और खाद्य स्थान में लेजाना चाहिये।

(१५) कठोरता पूर्वक चिल्लाकर गायों को खदेड़ना गाली देकर वृथा उत्पात मचाकर गायों को उत्तेजित करना बड़ा ही अनुचित है। आन्धी तूफान वर्षा तथा शीत के समय गायों को बाहर कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

(१६) गायों का भोजन हठात् बदलना नहीं चाहिये।

(१७) गायों को भोजन देने में कंजूसी नहीं करनी चाहिये जहां तक हो सके उन्हें ताज़ा चीजें खिलानी चाहियें। सड़ी या मकड़ी लगी हुई चीजें गाय को कभी नहीं खिलानी चाहिये।

(१८) खूब साफ और ताज़ा पानी का खूब काफी बन्दोबस्त रखना चाहिये। बासी अथवा बहुत ठंडा पानी गायों को कभी नहीं पिलाना चाहिये।

(१९) गो गृहों में नमक ऐसी जगह रखदेना चाहिये जिसमें गायें अपनी इच्छानुसार उसे खा सकें।

(२०) प्याज, करमकल्ला और मूली गाय को दूहने के बाद खिलानी चाहिये। इस के सिवा और किसी समय यह चीजें नहीं देनी चाहियें।

(२१) गाय की सब देह अच्छी तरह साफ रखनी चाहिये यदि थन के पास रोमों की सफ़ाई आसानी से न हो सके तो उन्हें कैंची से छांट देना चाहिये।

(२२) प्रसव के २० दिन पहिले और प्रसव के १५ दिन बाद का दूध व्यवहार करना चाहिये।

(२३) गाय के दूहन वाले को सब प्रकार से साफ सुथरा रहना चाहिये। गाय को दूहने से पहिले दूहने वाले को तम्बाकू नहीं पीना चाहिये। गो दोहन से पहिले हाथ धोकर और साफ़ कपड़ों से पोंछ कर दूहने में हाथ लगाना चाहिये।

(२४) गोदोहन से पहिले दूहने वाले को एक साफ़ कपड़ा पहन लेना चाहिये। फिर उस कपड़े को उतार कर रख देना चाहिये। केवल दूहने के समय ही उस कपड़े को व्यवहार करना चाहिये।

(२५) दूहने से पहिले थन को ब्रुश कर लेना चाहिये और उस के बाद एक भीजे गमछे से उसे पोंछ लेना चाहिये।

(२६) शान्त भाव से, तेज़ी से, सफ़ाई से और सम्पूर्ण रूप से गायों को दूहना चाहिये। अनावश्यक शोर और समय बरबाद करना गायें पसन्द नहीं करतीं। सवेरे और शाम को एक ही समय और एक ही प्रणाली से गो दोहन करना चाहिये।

(२७) गाय के प्रत्येक स्तन से पहिले थोड़ा सा दूध निकाल कर फेंक देना चाहिये। क्योंकि उस में पानी का अंश अधिक रहता है। उसमें कोई सार पदार्थ नहीं होता। वह दूसरे दूध में मिल कर उसे भी नष्ट कर सकता है।

(२८) यदि दूहने के समय किसी गाय के दूध में रक्त हो उस का रंग अस्वाभाविक हो तो उसे फेंक देना चाहिये।

(२९) गायों को सूखे हाथों से दूहना चाहिये। दूहने वाले के हाथ में दूध नहीं लगना चाहिये।

(३०) दूहने के समय बिल्ली कुत्ते या दूसरे किसी जानवर को गाय के निकट नहीं रहने देना चाहिये।

(३१) यदि दूध में कोई खराब चीज़ पड़ जाय तो ऊपर का अंश फेंक कर बाकी रखलेना अनुचित है। ऐसी हालत में सब दूध फेंक देना चाहिये।

(३२) हरएक गाय का दूध रोज़ तोल कर उस के परिमाण का हिसाब रखना चाहिये। सप्ताह में एक गाय के दूध में कितना मक्खन होता है उस का एक हिसाब रखना चाहिये।

दूध की हिफ़ाज़त।

(३३) गायको दूहने पर दूध वहांसे फौरन हटाकर किसी दूसरे स्थान पर रख देना चाहिये। और ऐसे स्थान में रखना चाहिये जो साफ़ एवं हवादार हो। दूध का बरतन भरने की राह देखना ठीक नहीं है।

(३४) गाय को दूहने के बाद तुरन्त ही दूध को फ़लालैन, रूई या घातू के ढकने से ढक देना चाहिये।

(३५) गो दोहन के बाद ही दूध को गरम करके और ठंडा करलेना चाहिये। यदि इस के लिये पात्र आदि तुरन्त न मिलें तो पहले दूधको निर्मल वायु में रख देना चाहिये। यदि दूध को जहाज द्वारा कहीं भेजना होतो ४५ डिग्री और नहीं भेजना हो तो ६० डिग्री ठंडा करलेना चाहिये।

(३६) दोहन करने पर तुरन्त ही दूध को ढक देना भी अच्छा नहीं। कुछ ठंडा होजाने पर ढकना चाहिये।

(३७) यदि दूध के बरतन का ढकना नहीं तो उसे साफ कपड़े से ढक कर रखना चाहिये। ताकि

उसमें कोई कीड़ा मकोड़ा आदि न पड़ने पावे।

(३८) यदि उस दूध को गुदाम में रखने की जरूरत हो तो उसे ऐसे गुदाम में रखना चाहिये जो साफ़ हवादार और शीतल हो। दूध को ताजे पानी से भरेहुए हौज में बरतन समेत रख देना चाहिये (जिस हौज में दूध रखा जाय उस का पानी रोज़ बदल देना चाहिये) दूध में से यदि क्रीम निकालना हो तो टीनकी मथनी द्वारा मक्खन निकालना चाहिये।

(३९) रातमें दूध को आवृत्त स्थान में रखना चाहिये जिसमें बरसात का पानी दूध के बरतन में न पड़े। गरमी के दिनों में दूधका पात्र ठंडे पानी के हौज में रख देना चाहिये।

(४०) ठंडे दूध के साथ ताजा दूध मिलाकर रखना ठीक नहीं है।

(४१) दूध को जमने देना उचित नहीं है।

(४२) किसी अवस्था में दूध नष्ट न हो, इसके लिये उसमें कोई चीज़ मिलाना उचित नहीं है।

(४३) खरीदार को अच्छा दूध ही देना चाहिये। गर्मी के दिनों में दो बार (सवेरे शाम को) देना चाहिये।

(४४) यदि दूध को कहीं दूर स्थान में भेजना हो तो सिङ्क वाले पात्र में रख कर भेजना चाहिये।

(४५) गर्मी के दिनों में यदि गाड़ी में दूध भेजना होतो उस के बरतन का मुंह भीगे कपड़े से ढक कर भेजना चाहिये

(४६) पात्र-गोशाला के बरतन धातु के और खूब साफ़ होने चाहियें। पात्र का बाहरी और भीतरी अंश सर्वदा साफ़ रखना चाहिये। पात्र के जोड़ों को अच्छी तरह साफ़ रखना चाहिये और अच्छी तरह जोड़ दिये हुए होना चाहिये।

(४७) दूध बेचने वाले पात्र में गोशाला का कूड़ा आदि कभी नहीं रखना चाहिये। क्रीम निकाले हुए पानी और छाना के जल पर नजर रखनी चाहिये।

(४८) क्रीम निकाले हुए जल का पात्र जिस समय गोशाला मे आये, उसी समय उसे साफ़ कर देना चाहिये।

(४९) गोशाला में जितने धातु पात्र हों, उन्हें पहले किञ्चित् गरम जल से धोना चाहिये और उस में परिष्कारक द्रव्य भी मिलाना चाहिये। उस के बाद ब्रुश से अच्छी तरह रगड़ कर फिर अच्छे जल से धो लेना चाहिये। और गरम जल से भाफ़ द्वारा बरतनों को साफ़ कर लेना चाहिये।

(५०) बरतनों को धोकर धूप में सुखा लेना चाहिये और हवा भी अच्छी तरह लगा लेना चाहिये।

भजन

मेरे मन राम को नाम अधारा ॥ टेक ॥
शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक,
निशिदिन करत विचारा ॥
जाके जपत कटत दुख: दारुण,
उतर जात भव पारा ॥
शबरी गीध अजामिल से खल,
तिनहूं को प्रभु तारा ॥
प्रेम लाय जो ध्यान लगावे,
सो पावे सुख सारा ॥
जिन जिन शरण लीन संकट में,
तिनको आप सुधारा ॥

आयो तव पद शरण नाथ मैं,
औगुण अमित अपारा ॥
निरधर पार उतारो मोको,
लै हौं नाम तुम्हारा ॥

२

साधो गोविन्द के गुण गावो ॥ टेक ॥

मानुष जन्म अमोलक पायो,
विरथा काहे गंवावो ॥
पतित पुनीत दीनबान्धव हरि,
शरण ताहि तुम आवो ॥
गज की त्रास मिटि जेहि सुमिरत,
तुम काहे बिसरावो ॥
तज अभिमान मोह माया पुनि,
भजन राम चित लावो ॥
नानक कहत मुक्त पथ एही,
गुरु मुख होय तुम पावो ॥

३

मैं बारी जाऊं सतगुरू की मेरा किया भरम सब दूर ॥

चन्द चढ़ा सब आलम देखे, मैं देखूं भ्रम दूर ।
हुवा प्रकाश आश गई दूती, लगया निर्मल नूर ॥१॥
माया मोह तिमिर सब नाशा, पाया हाल हजूर ।
विषय विकार लाल हैं जेता, जार किया सब धूर ॥
पीया प्याला सुध बुध बिसरी होगया चकना चूर ।
हुवा अमर मरै नहीं कबहू, पाया जीवन मूर ॥
बन्धन कटा छुटिया जमसे, किया दर्श मञ्जूर ।
ममता गई भई उर समता, दुख सुख डारा दूर ॥
समझै बनै कहे नहीं आवे, भयो आनन्द भरपूर ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बजिया निर्मल तूर ॥

४

भीजै चुनरिया प्रेम रस बून्दन ॥टेक॥

आरत साज के चली है सुहागिन,
पी अपने को ढूंढन ॥
काहे की तोरी बनी है चुनरिया,
काहे के लागे चारों फून्दन ॥
पांच तत्व की बनी है चुनरिया,
नाम के लागे फुन्दन ॥
चढके महल खुलगयेरे किवरवा,
दास कबीर लागे झूलन ॥

५

गगन की ओट निशाना है ॥ टेक ॥

दहिने सूर चन्द्रमा बांये तिनके बीच छिपाना है ॥१
तन की कमान सुरत का रोदा,
शब्द बाण ले ताना है ॥
मारत बाण बिन्धा तन ही तन,
सद्गुरु का परवाना है ॥
मारयो बाण घाव नहीं तनमें,
जिन लागा तिन जाना है ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
जिन जाना तिन माना है ॥

६

भक्ति का मार्ग झीना रे ॥

नहीं अथाह नहीं चाहनारे, चरणन में लौलीना रे ॥
साध के सत्संग में रहे रे, निशदिन मन भीना रे ॥
शब्द में सुरत ऐसे बसे जैसे जल मीना रे ॥
मान मनी को यों तजे, जैसे तेली पीना रे ॥
दया क्षमा सन्तोष गहि, रहे अति आधीना रे ॥
परमारथ में देत सिर, कछु विलम्ब न कीना रे ॥
कहै कबीर मत भक्ति का, प्रगट कहदीना रे ॥

७

रहना नहिं देश विराना है ॥

यह संसार कागद की पुड़िया,बून्द पड़े घुल जाना है ॥
यह संसार कांटे की बाड़ी उलझ पुलझ मर जाना है ॥
यह संसार झाड़ औ झांकर आग लगे बल जाना है ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो सद्गुरु नाम ठिकाना है ॥

८

मारग विहंग बतावें सन्तजन ॥

कौने घर से जीव की उत्पत्ति कौन घरको जावे ।
कहां जाय जीव परलय होयगा सो सुर तहां चढावे ॥
गढ सुमेर बाही को कहिये, सुई नखासे जावे ।
भूमण्डल से परिचय करले, पर्वत धौल लखावे ॥
द्वादश कोस साहिब का डेरा, तहां सुरत ठहरावे ।
वाको रंग रूप नहीं रक्खा, कौन पुरुष गुण गावे ॥
कहे कबीर सुनोभाई साधो, जो यह पद लखि पावे
अमर लोक में झूले हिंडोला, सतगुरु शब्द सुनावे ॥

९

मनको न तोल्यो तो का तोल्यो बनियां ॥

काहे की पूंजी काहे का सौदा,
काहे की लेके दुकनियां ॥
काहे की डांडी काहे का पलरा,
काहे की मारो डडनियां ॥
कर्म की पूंजी धर्म का सौदा,
चितकी लेके दुकनियां ॥
या तन के जो डांडी पलरा,
प्रेम की मारे डडनियां ॥
काया नगर के हाथ में रं,
ऊंचो लेके दुकनियां ॥
कहे कबीर सुनोभाई साधो,
छोड़ दे तन की लदनियां ॥

१०

अवधू बेगम देश हमारा ॥

राजा रंक फकीर बादशाह, सब से कहूं पुकारा ॥
जो तुम चाहत अहो परमपद, बसि हो देश हमारा ॥
जो तुम आये झीने होके, तजो मनी को भारा ॥
ऐसो रहनी रहो रे गोरख, सहज उतर जाव पारा ॥
सत्य नाम की हैं महतावें, साहिब के दरबारा ॥
बचना चाहो कठिन कालसे, गहो शब्द टकसारा ॥
कहै कबीर सुनो हो गोरख, सत्य नाम है सारा ॥

११

अब से खबदार रहो भाई ॥

सतगुरु दीन्हा माल खजाना, राखो जुगत लगाई ॥
पाव रती घटने नहीं पावे दिन२ बढै सवाई ।। १ ॥
छिमा शील अलफी पहिने, जुगत लंगोट लगाई ॥
दया की टोपी सिर पर देके, और अधिक बनि आई
वस्तु पाय गाफिल मत रहना, निशिदिन करो कमाई ॥
घटके भीतर चोर लगतु हैं, बैठे घात लगाई ॥ २ ॥
तन बन्दूक सुमतिका सिंगरा, प्रीतका गज दहकाई ॥
सुरत पलीता हर दम सुलगै, कस पर राख चढाई ॥४॥
बाहर वाला खड़ा सिपाई, ज्ञान गम्म अधिकाई ॥
साहिब कबीर आदि के अदली, हर दम लेत जगाई ॥५
१२

हंसा जगमग जगमग होई ॥ टेक ॥

बिन बादल जहां बिजली चमके अमृत वर्षा होई ।
ऋषि मुनि देव करें रखवाली पिय न पावें कोई ॥
रात दिवस जहां अनहद बाजै धुनि सुनि आनन्द होई
झरना झरे जूहके नाके पियत अमर पद होई ॥
चेतन वाला चेत पियारे नहीं तो जात बहोई ॥
साहिब कबीर प्रभु मिले विदेही चरणन भक्ति समोही

१३

हंसा हंस मिले सुख होई ॥
यहां सो पातो हैं बगुलन की, कदर न जाने कोई।
जो हंसा तोरे प्यास क्षीर की, कूप नीर नहीं होई ॥
यह तो नीर सकल ममता को, हंसा तजा अस चोई
षट्दर्शन पाखण्ड छानवैं, भेष धरे सब कोई ॥
चार वर्ण और वेद कितावैं, हंस निराला होई।
कहै कबीर प्रतीत मान लै, जिव नहीं जाय बिगोई ॥
ले बैठारो अमर लोक में आवागमन न होई ॥

१४

क्यों सोवै रे चलना है दूर ॥
चेत अचेत नर सोच बावरे,
बहुत नींद मत सोवरे ॥
काम क्रोध मद लोभ में फंस गये,
हो हुसियार कमर काहे खोवैरे ॥
सिर पर माया मोह की गठरी,
संग धूत तेरे होवै रे ॥
सो गठरी तेरी बीच में छिन गई,
मूंड पकरि कहा रोवैरे ॥
रस्ता तो वह दूर विकट है,
तजि चलव अकेला होवै रे ॥
संग साथ तेरे कोई न चलेगा,
काकी डगरिया जोवैरे ॥
नदिया गहरी नाव पुरानी,
केहि विधि पार तू होवैरे ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
ब्याज के धोके मूल मत खोवैरे ॥

१५

हमें रे कोई कातन देई सिखाय ।
कात ननदिया कात जिठनिया कात परोसिन आय।
पौनी पांच पचीस रंग की हम से कातन जाय ॥
ब्रह्मा काता विष्णु काता नारद काता आय।
विश्वामित्र वशिष्ठ दोऊ काता तबहू न कात सिराय।
तन के काते कहा भया जो, मन हो काता न जाय।
टिकवा साधन जो बनि आवे मंहगे मोल बिकाय ॥
बाला काता तरुण काता बिरध कात न जाय।
कहै कबीर तीनों पन काता चरखा धरा उठाय ॥

१६

आपनो क्यों न सम्भारै काजा।
आपन काहे न सम्भारै काजा ॥
ना गुरू भगति साधकी संगति करत अधम निरलाजा।
मानुष जन्म फेर नहीं पैहो सब जीवन में राजा ॥
परनारी त्यागी कर जाने सो नर नरक समाजा।
जिनके पन्थ भूल गये भौंदू कर चलने का साजा ॥
यहां नहीं कोई मीत तुम्हारा मात पिता सुत आजा।
यह हैं सब मतलब के साथी काहे करत अकाजा ॥
वृद्ध भये पर नाम भजतु हैं निकसत सुरत अवाजा।
टूटी खाट पुराना भिगला पड़े रहो दरवाजा ॥
ब्रह्माविष्णु महेश डराने, सुनत काल के गाजा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो चढले नाम जिहाजा ॥

१७

जतन बिन मिरगन खेत उजारे ॥
पांच मिरग पच्चीस मिरगनी तिन में तीन चितारे।
अपने अपने रस के भोगी चुगते न्यारे न्यारे ॥
पांच डार सूटन की आई उतरे खेत मंझारे।
हा हा करत बाज लै भागे टेर रहे रखवारे ॥
सुनियो रे हम कहत सबन को ऊंचे हांक हंकारे।